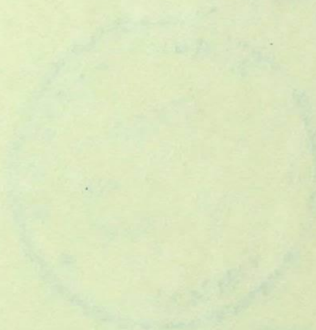
शीराज़ा

हिन्दी

ललित कला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर



शीराज़ा

वर्ष : ४ अंक : १

१९६८ (एक)

संचालक
नीलाम्बरदेव शर्मा (सचिव)

सम्पादक
नरेन्द्र खजूरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू ।

वार्षिक : चार रुपये

प्रति अंक : दो रुपये

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता :

नरेन्द्र खजूरिया

सम्पादक शीराज़ा [हिन्दी]

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर

एक्सचेंज रोड, जम्मू

फोन : ५०४०

सैक्रेटरी द्वारा, ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर
के लिए प्रकाशित तथा योगेश प्रेस, जालन्धर में मुद्रित ।

१९६८ (एक)

लेख

काव्य-धारा

कथा साहित्य

स्थायी स्तम्भ

बिम्ब-प्रति बिम्ब

प्रस्तुत अंक के साथ 'शीराज़ा' (हिन्दी) चतुर्थ वर्ष में प्रवेश कर रहा है। तीन वर्ष की अवधि एक पत्रिका के जन्म-विकास की प्रारम्भिक अवस्था होती है, परन्तु गत तीन वर्षों में जो सम्मति-पत्र हमें देश के विभिन्न भागों से 'शीराज़ा' के सम्बंध में प्रशस्त विद्वानों से प्राप्त होते रहे हैं, उनसे अपने इस लघु प्रयत्न की उपयोगिता का भास हमें अवश्य हुआ है। इस सफलता के लिए बधाई के पात्र हमारे वे विद्वान साहित्यकार, भाषाविद् तथा साहित्य-अन्वेषक हैं, जिनका सहयोग हमें सदा मिलता रहा है।

**
**

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर, कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, हिन्दी तथा पंजाबी भाषाओं में प्रतिवर्ष नियमित रूप से सर्जनात्मक कृतियों का प्रकाशन करती है। मूल ग्रंथों के प्रकाशन के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट पुस्तकों का कश्मीरी तथा डोगरी भाषा में अनुवाद-कार्य भी होता है। रविन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, प्रेमचंद, सी० राजगोपालाचारी आदि लेखकों की प्रसिद्ध कृतियों का अनुवाद-कार्य सम्पन्न हो चुका है।

"अन्तर प्रादेशिक-सांस्कृतिक प्रदर्शन" योजना के अन्तर्गत इस वर्ष मैसूर, तथा मध्य प्रदेश के सांस्कृतिक दल क्रमश: कश्मीर तथा जम्मू, में अपनी कला के प्रदर्शन करेंगे।

⁂

अकादमी के तत्वावधान में इस वर्ष भी जम्मू, उधमपुर, भद्रवाह, कठुआ तथा पुंछ में विशेष कहानी-गोष्ठियां आयोजित की गईं, जिनमें हिन्दी, डोगरी, उर्दू तथा पंजाबी के कथाकारों ने भाग लिया। ये आयोजन अत्यन्त सफल रहे। श्रोताओं का उत्साह इस बात का साक्षी था कि आज भी कथा-साहित्य एक सशक्त विधा है।

इसी तरह अकादमी द्वारा आयोजित कवि सम्मेलनों, पुस्तक-प्रदर्शनियों, संगीत तथा चित्रकला की वार्षिक-प्रतियोगितायों ने राज्य के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रयत्नों में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

सम्पादक

पत्र मंच

मोहन यावर, सम्पादक, 'रफ़्तार' जम्मू

......हिन्दी में शीराज़ा ने वो मुकाम हासिल कर लिया है जो किसी भी अच्छे मेयारी हिन्दी रिसाले को हासिल है......ये सब तुम्हारा कमाल है तुम्हारी लगन है, तुम्हारी अनथक मेहनत का नतीजा है......।

परमानन्द 'अलमस्त', जम्मू

जम्मू–कश्मीर जैसे अहिन्दी प्रांत से 'शीराज़ा' का प्रकाशन बहुत बड़ी बात है। जम्मू-कश्मीर की पत्रिकाओं के इतिहास में आपने सचमुच नया रिकार्ड कायम किया हैं।

देवेन्द्र नारायण, नई दिल्ली

'शीराज़ा' का १९६८ (दो) अंक सुन्दर तथा कलापूर्ण रचनाओं का संग्रह है। 'डोगरी और पुंच्छी का तुलनात्मक अध्ययन' (सत्यपाल शास्त्री) 'स्वाधीनता के बाद हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृतियां' (विष्णुकान्त शास्त्री) 'पापी पुजारियों की सन्तान' (अली मोहम्मद लोन) तथा यश शर्मा का 'डोगरी गीत' सराहनीय कृतियां हैं।

ओंकार नाथ, जयपुर

'शीराज़ा' एक मित्र के पास देखा। यों तो ढेरों पत्रिकाएं आती हैं, मगर शीराजा मुझे उच्चकोटि की पत्रिका लगी। जम्मू-कश्मीर तथा कश्मीरी व डोगरी भाषा की जानकारी देने वाली यह एकमात्र पत्रिका है। हिन्दी पत्रिकाओं में आपका यह प्रयास सराहनीय है। हां, रूप-सज्जा की कमी अवश्य खटकती है।

कृष्ण चन्द्र, ग्वालियर

'शीराजा' के नवे अंक को देखकर तो मैं आश्चर्यित हो गया हूं। जम्मू-कश्मीर जैसे अहिन्दी प्रान्त से ऐसी सुरुचि-पूर्ण पत्रिका का प्रकाशन बड़े उत्साह, लगन और सुरुचि का परिचय है। सचमुच यह हिन्दी की बड़ी सेवा है। लद्दाख, कश्मीर तथा जम्मू से सम्बन्धित सामग्री हिन्दी पाठकों के लिए प्रस्तुत करना आपका सत्प्रयत्न है। बधाई स्वीकारें.........।

❋

डोगरी – भाषा या उपभाषा

प्रो० रामनाथ शास्त्री

साहित्यिक रूप से उभरती हुई कोई भी भाषा-बोली उसी तरह संवेदनशील होती है जैसे परतन्त्रता के अन्धेरे से मुक्त होकर विकास के पथ पर अग्रसर होने को उत्सुक कोई पिछड़ी हुई जाति। शक्तिशाली उपनिवेशवादी शक्तियों के स्वार्थ में, लाचारी का जीवन काटना तो एक निरीह विवशता होती है, लेकिन इससे जैसे उस जाति को राष्ट्र-परिवार में स्थान पाने के अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकता, उसी तरह अविकसित भाषा-बोलियों को भी सदा के लिये पिछड़ेपन में कैद नहीं रखा जा सकता।

डोगरी एक ऐसी ही साहित्यिक रूप से उदीयमान बोली है जो उस पुरानी धारणा के बारे में अत्यन्त खीझ अनुभव करती है, जिसमें एक उपेक्षापूर्ण तोता-रटन्त से काम लिया गया है। वह धारणा है डोगरी को पंजाबी की उपभाषा मानने की। इस दुर्भाग्यपूर्ण धारणा के जन्म दाता हैं डा० ग्रियर्सन जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के भाषायी सर्वेक्षण से सम्बद्ध, अपने महत्वपूर्ण प्रकाशन (Linguistic Survey Of India) की पुस्तक नौ, भाग एक में डोगरी का उल्लेख इस प्रकार किया है :

"Punjabi has two dialects—the ordinary idiom of the language and Dogra or Dogri. The later, in various forms is spoken over the Sub-montane portion of the Jammu State and over most of the Head Quarters Division of the Kangra district with an overflow into the neighbouring parts of the districts of Sialkot and Gurdaspur and of the state of Chamba.

अर्थात्—"पंजाबी की दो उपभाषाएं हैं—एक तो भाषा का सामान्य व्यावहारिक रूप और दूसरा डोगरा या डोगरी। यह दूसरा उपभाषायी रूप कई विविधताएं लिये, जम्मू प्रांत के निचले पहाड़ी प्रदेश में तथा पंजाब के कांगड़ा प्रांत में बोला जाता है। सियालकोट तथा गुरदासपुर के ज़िलों के उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों के अतिरिक्त रियासत चम्बा के निचले प्रदेश में भी इसका प्रसार है।"

सर ग्रियर्सन का यह भाषायी सर्वेक्षण इतने विशाल पैमाने पर हुआ था कि उसके प्रकाशित कलेवर के सम्मुख भारतीय भाषाशास्त्री प्रायः, जड़मुग्ध होकर जैसे नतमस्तक रह गये। इतने महान् कार्य को इतनी कुशलता से सम्पन्न करने वाले मनीषी के प्रति आभार की भावना भी बड़ी प्रबल थी, तथा उसके साथ साथ उसमें अपनी हीन-भावना भी रही हो तो आश्चर्य नहीं।

परिणाम इसका यह हुआ कि सर ग्रियर्सन के निष्कर्षों को प्रायः अन्तिम मान-कर, आप्त वचन के रूप में उद्धृत किया जाने लगा। हिन्दी में लिखी-छपी भाषा-विज्ञान सम्बन्धी पोथियों में, जहां भारतीय उपमहाद्वीप में प्रयुक्त भाषाओं का ब्योरा रहता है, वहां यदि कहीं डोगरी का किसी विद्वान् ने उल्लेख किया भी है तो एकाध पंक्ति में केवल इतना कहा गया है कि डोगरी पंजाबी की एकमात्र उल्लेखनीय उपभाषा है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० भोलानाथ तिवारी, मोहनलाल गौतम, राम बहोरी शुक्ल, और भगीरथ मिश्र आदि ने अपने ग्रन्थों में डोगरी का ज़िक्र ऐसे किया है:—

(१) पंजाबी भाषा में बोलियों का भेद अधिक नहीं है। उल्लेख योग्य केवल एक बोली "डोग्री" है। यह जम्मू राज्य में बोली जाती है। टाकरी या टक्करी नाम की इस की लिपि भी भिन्न है।

—डा० धीरेन्द्र वर्मा (हिन्दी भाषा का इतिहास)

(२) पंजाबी के प्रमुख दो रूप हैं। एक तो आदर्श या परिनिष्ठित पंजाबी है, जो केन्द्रीय पंजाब के मैदानों में प्रयुक्त होती है। पंजाबी का दूसरा रूप डोगरा या डोगरी है। यह जम्मू तथा पंजाब के कुछ भागोंमें बोली जाती है। इस पर "काश्मीरी" तथा "लहंदा" का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। डोगरी टाकरी लिपि में लिखी जाती है।

—डा० भोलानाथ तिवारी (हिन्दी भाषा)

यह सन्दर्भ पूर्ण रूप से सर ग्रियर्सन के कथन का प्रायः शब्दानुवाद है।

(३) पूर्वी पंजाबी, अमृतसर और उसके आस पास के भाग में बोली जाती है। इस की कई उपभाषाएं हैं। इन में डोगरी, कांगड़ा तथा जम्मू में प्रचलित है।

—राम बहोरी शुक्ल तथा भगीरथ मिश्र
(हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास)

(४) पंजाब की उपभाषाओं के बारे में पहले पहल कुछ पश्चिमी विद्वानों ने ही खोज की है। डा० ग्रियर्सन की पुस्तक इस विषय पर आज भी प्रामाणिक मानी जाती है। पूर्वी पंजाबी की उपभाषाओं में डोगरी, कांगड़ी तथा हिमाचल प्रदेश की भाषाएं प्रमुख हैं।

जम्मू प्रदेश में डोगरी भाषा बोली जाती है। इस क्षेत्र को डोगर देश भी कहा जाता है। डोगरी काफी सीमा तक, टकसाली पंजाबी से मिलती हैं। अन्तर केवल इतना है, कि नामों के पीछे विभक्तियां अलग तरह से जोड़ी जाती हैं। इसकी शब्दावली पर कश्मीरी और पोठोहारी का प्रभाव है।

—पी० के० हरिवंश

("सप्तसिन्धु" उपभाषा विशेषांक "पंजाब की उपभाषाएं")

(५) ग्रियर्सन के सर्वे के अनुसार पंजाबी की उपभाषा डोगरी है।

--प्रो० गौरी शंकर

(डोगरी भाषा, "सप्तसिन्धु", जनवरी १९६५)

(६) भाषा विज्ञान के कई पण्डित डोगरी को पंजाबी की उपभाषा कहते है, और कई विद्वानों की दृष्टि में यह एक स्वतन्त्र भाषा है, साधारणतया भौगोलिक दृष्टि से डोगरी का सीधा सम्बन्ध पंजाबी के साथ आता है।

— श्याम लाल शर्मा

(डोगरी भाषा : एक परिचय "सप्तसिन्धु"—जनवरी १९६५)

(७) पंजाबी की केन्द्रीय बोली के छः प्रकार हैं। मांझी, दुआबी, मलवई, लहंदी, पहाड़ी और सरहदी। पहाड़ी बोली के निम्नलिखित भेद हैं—डोगरी, कांगड़ी, पश्चिमी चम्बयाली।

—प्रो० मोहन मैत्रेय ("सप्तसिन्धु" जनवरी १९६५)

(८) पंजाबी इक सुतन्तर जबान है जो आप कई उपभाषावां रखदी है, जिवें मुलतानी, पोठोहारी, डोगरी, भटियाली, पुआधी आदि। सो इक सुतंतर बोली किसे दी उपबोली किवें हो सकदी है।

—प्यारा सिंह 'पदम'

"पंजाबी भाषा दी वड़िआई"

'पंजाबी दुनियां' भाषा अंक मार्च-अप्रैल—१९६५

(९) पंजाबी दिआं उपभाषावां दा विगियानक (विज्ञानक) अधिएन (अध्ययन) करन दा जतन सबतों पहलां डा० ग्रियर्सन ने कीता। पर उसने केवल पंजाबी दे पूरवी भाग दियां उपभाषावां नूं पंजाबी दियां उपभाषावां मन्नेआ है, पच्छमी पंजाब दी भाषा

नूं उसने लहिन्दा नां दे के सुतंतर भाषा मन्नेआ है, अते पोठोहारी आदि नूं उसदी उपभाषा । जो कुझ ग्रियर्सन ने भाषायी आधार ते सिद्ध करन दा जतन कीता सी, उस समें उह अन-विगिआनक अते गलत सी । डा० तेजासिंह आदि विद्वानां ने लहंदी नूं पंजाबी दी उपभाषा मन्नेआ है ।

—स० राजिन्दर सिंह

"पंजाबी दिआं उपभाषावां"

(पंजाबी दुनियां—अप्रैल—१९६५)

सर ग्रियर्सन के इस निष्कर्ष को कि डोगरी पंजाबी की उपभाषा है, हिन्दी पंजाबी के इन विद्वानों ने यदि सहज ही स्वीकार कर लिया, तो इस में आश्चर्य नहीं ।

किसी ने भी डोगरी का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने की आवश्यकता अनुभव नहीं की । भाषायी सर्वेक्षण के इतिहास में इस तरह की उपेक्षा के, तथा एक गलत धारणा को ही बार बार दुहराने के उदाहरण बहुत मिलते हैं । डोगरी को भी इसी अन्धानुकरण की प्रवृत्ति का लक्ष्य बनना पड़ा है ।

इस प्रवृत्ति ने जिस प्रकार इस प्रश्न के दूसरे पक्ष को सर्वथा दबा-सा दिया था उसे देख कर दुःख भी होता है और खीझ भी । वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति भी कई बार बड़े २ प्रभावों के नीचे दब जाती है । डोगरी को एक स्वतन्त्र भाषा स्वीकार करने वाले सभी तथ्य आज तक जैसे विचार करने के योग्य भी नहीं माने गये । बस एक ही रट है जो बार २ दुहराई जाती है और वह यह कि सर ग्रियर्सन डोगरी को पंजाबी की उपभाषा घोषित कर चुके हैं ।

आइए, आज इस रोचक विषय पर विवेक तथा संयत धैर्य से विचार करें । सबसे प्रथम सर ग्रियर्सन के ही उस महिमशाली सर्वेक्षण ग्रंथ के साक्ष्य से प्रारम्भ करते हैं ।

अपने ग्रंथ की पहली पुस्तक (Vol. I भाग १) में भारतीय भाषायी सर्वेक्षण के क्षेत्र में हुए कुछ पहले प्रयत्नों का भी उल्लेख किया गया है । उन्होंने वहां ईलियट(Eliot) द्वारा लिखित भारतवर्ष के इतिहास (History of India, Part III Page 562) से एक अंश उद्धृत किया है, जिसमें अमीर खुसरो (१२५३ ई०—१३२५) का एक वक्तव्य दिया गया है । खुसरो के वक्तव्य का हिन्दी रूप इस प्रकार है ।

"चूंकि मैं जन्म से भारतीय हूं, इसलिये मैं इस देश की भाषा के बारे में कुछ कहना चाहता हूं । आज इस देश के अलग २ प्रदेशों में ऐसी स्वतन्त्र और रोचक भाषायें बोली जाती हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल मुख्तलिफ मालूम होती हैं । ये भाषायें हैं :— सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, डूगरी (डोगरा लोगों की ज़बान) मैसूर की कन्नड़, तिलंग (तेलगु), गुजरात, मलाबार, तामिल, गौड़ (बंगला), अवध (पूर्वी हिन्दी) तथा दिल्ली के आस पास बोली जाने वाली भाषा (पश्चिमी हिन्दी) ।

सर ग्रियसन ने अपने भाषा सर्वेक्षण की भूमिका में तेरहवीं सदी के इस ख्यातनामा साहित्यिक राजनीतिज्ञ की, डूगरो (डोगरी) के स्वतन्त्र भाषा होने सम्बन्धी इस स्पष्ट घोषणा का उल्लेख किया है। इस प्रसंग में उन्होंने एक अंग्रेज पादरी श्री विलियम करे (Carrey) का भी जिक्र किया है जो १७९१ ई० में भारत में आया और ईसाइयत के प्रचार की योजना के निमित्त जिसने १८१६ ई० में भारत की ३३ प्रमुख भाषाओं की एक विस्तृत सर्वेक्षण रिपोर्ट अपने मिशन को पेश की। इन ३३ भाषाओं में श्री करे ने बंगाल, हिन्दी, कश्मीरी, वुच (नहंग) और सिन्धी आदि के साथ डोगरी का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। भाषा सर्वेक्षण की जो पद्धति श्री करे ने इस्तेमाल की थी, सर ग्रियर्सन ने भी अपने सर्वेक्षण में उसी पद्धति का अनुसरण किया है।

इन दो स्पष्ट मतों से भली भांति परिचित होकर भी सर ग्रियर्सन ने डोगरी को स्वतन्त्र भाषा स्वीकार नहीं किया। इससे सामान्यतया यह धारणा पुष्ट होती है, कि अवश्य ही उन्हें अपने सर्वेक्षण में ऐसी सुनिश्चित सामग्री मिली होगी जिसके आधार पर उन्होने अमीर खुसरो तथा श्री करे से असहमति प्रकट करते हुए डोगरी को पजाबी की उपभाषा घोषित किया। वह सामग्री क्या थी ?

आइए, जरा उस सामग्री की परख पड़ताल करें। इस सर्वेक्षण में सर ग्रियर्सन को स्थानीय प्रशासन की ओर से पूर्ण सहयोग और सुविधाएं प्राप्त थीं। अवश्य ही उन्हें प्रत्येक प्रादेशिक सर्वेक्षण के लिये स्थानीय पढ़े लिखे व्यक्तियों, सम्भवत: सरकारी कर्मचारियों की सेवायें प्राप्त रहीं होंगी। प्रत्येक भाषा-उपभाषा की भाषा-वैज्ञानिक परख-पड़ताल करने के लिये उन्होंने प्रधान रूप से Prodigol's son (अपव्ययी आत्मज) नाम की अंग्रेज़ी कथा के उस भाषा-बोली में अनुवाद देखे-परखे और कहीं कहीं उसके साथ ऐसी ही कुछ दूसरी सामग्री (जैसे लोक-कथा, लोक गीत आदि) का भी उपयोग किया।

Prodigol's son शीर्षक कथा के अनुवाद के आधार पर भाषा-बोली के स्वरूप को निश्चित करना बड़े भरोसे का साधन नहीं हो सकता। कारण, अनुवाद करने वाले का उस भाषा बोली से सम्बन्ध तथा उस पर उसके अधिकार की मात्रा, इस प्रयत्न को प्रभावित करती है। अनुवाद में प्रयुक्त होने वाले शब्द, वाक्यांश, मुहावरे, क्रिया-रूप आदि तो निश्चित रूप से उस अनुवादक के ही होंगे। वे उतनी ही मात्रा में उस भाषा की प्रकृति के भी अनुकूल हैं इस तथ्य की परीक्षा करने की सुविधा सर ग्रियर्सन को भी उपलब्ध नहीं हो सकती थी। कारण, जो आदमी डोगरी के प्रतिनिधि बन कर उसे मिले होंगे उन्हीं पर भरोसा करके चलना उसकी मजबूरी थी।

और यह अनुवाद प्रस्तुत करने वाले डोगरी के प्रतिनिधि कैसे थे ? इसका स्पष्ट अनुमान हमें उस लोक-गीत से हो जाता है जिसे ग्रियर्सन ने अपने सर्वेक्षण ग्रंथ

में डोगरी को पंजाबी की उपभाषा कहने के लिए प्रमाण-रूप में संकलित किया है। वह गीत 'रोमन ट्रांसक्रिप्शन' में वहां दिया गया है। उसका नागरी में रूप यह है :

१. हां रे, जिआ घहबरोन्दा (घबराओंदा) चेत (चित) मे'रा गदिए—की (गद्दिए-की) चाउहंदा (चौंदा) केत बिद (बिध) मिल-ए गदिए की जाइ-के ?

२. हां रे पंज ठग च'उरां (चोरां) गदिए-दा रहा (राह) भही (भी) ल'उट-लइदे (लैन्दे), ता'रे (तारे) गेंदी (गिन्दी) नू (नूं) रएन (रैण) ब' एहावई (बिहावई) ।

३. हां रे इछक (इश्क) ओन'उखा (अनोखा) लाड़िए-की गदिए-दा हो' एआ (होइआ) केन बेद म'लिए (मिलिए) गदिए की जा-आ-के (जाई के) ?

४. हां रे करकै (के) म्हबता (महब्बत) मान'उए (मानुए) दे राह वंच (विच) रहद'ए (रहंदे), तारे गेंदी (गिन्दी) नो (नूं) रेहण (रैण) वइहाव-ए (बिहावे) ।

इस लोक गीत (?) के आधार पर डोगरी को पंजाबी की उपभाषा (dialect) घोषित करना कितना अस्वाभाविक लगता है !

जिन कर्मचारियों ने डोगरी भाषा के उदाहरण के रूप में यह 'गीत' डा० ग्रियर्सन को दिया होगा वे कहां तक डोगरे रहे होंगे ? इस धरती के लोक-साहित्य से उन का परिचय कितना वास्तविक रहा होगा ?

और डा० ग्रियर्सन ने इसी सामग्री को प्रामाणिक मानकर डोगरी को पंजाबी की उपभाषा घोषित किया है। इस गीत को पढ़कर मुझे इस बात का दुःख हुआ है कि ऐसे कामों में यदि सही सामग्री न मिले तो परिणाम कितने दुर्भाग्यपूर्ण हो सकते हैं।

क्या इस गीत को डोगरी भाषा का लोकगीत कहा जा सकता है ? आज तक डोगरी के सात-आठ सौ लोक गीतों का जो संग्रह हुआ है, उस में क्या किसी संग्रहकर्त्ता को यह गीत भी मिला है ? क्या भाषा और विषय दोनों में इस तरह के कोई लोकगीत डुग्गर की सीमा-रेखा के अन्तर्गत प्राप्य हैं ? तीनों प्रश्नों का सहज उत्तर एक ही है, अर्थात नहीं।

भाषा और विषय की दृष्टि से इस लोकगीत पर तनिक ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। इसका भाषा-उच्चारण डोगरी के मौलिक ध्वनि-स्वभाव से कई जगह टक्कर खाता है। गीत में कई शब्दों के, बोल-चाल के रूप के साथ-साथ (ब्रैकट में) उसका दूसरा अधिक शुद्ध रूप भी दिया गया है। इस गीत में ये बातें विचार करने के योग्य हैं :

(i) डोगरी में कर्मकारक के साथ 'नूं' कारक चिह्न का प्रयोग नहीं होता।

यह विशुद्ध पंजाबी कारक-चिन्ह है । 'गेंदी (गिन्दी) नू'' का डोगरी रूप होता है—गिनदिया गी ।

(ii) डोगरी 'व' प्रधान भाषा है । इसमें कोई शब्द 'व' से शुरू नहीं होता । यह आदि 'व' पंजाबी भाषा की विशेषता है । इस गीत में 'व' का खुला प्रयोग इसे डोगरी के क्षेत्र से बाहर ले जाता है । 'रहा (राह) वैच' विशुद्ध पंजाबी उक्ति है । डोगरी में होना चाहिए था—राहे बिच' यारस्ते बिच' ।

(iii) डोगरी में 'ह' ध्वनि अत्यन्त सूक्ष्म रूप में उच्चारित होती है । पंजाबी में 'ह' का उच्चारण बड़ी स्पष्टता से होता है—जैसे इस गीत के इन रूपों में हुआ है : घह्बरोन्दा (घबराओंदा), चाउहंदां (चौंदा) भही (भी), ब'एहावई (बिहावइ), होए' आ (होइआ), रहद-ए (रहंदे) ।

(iv) घहबरोंदा (घहबराओन्दा), चाउहंदा, भही (भी), चूरां (चोरां) तथा लुट लइंदे आदि, ये सभी रूप डोगरी भाषा के लिये नितान्त अपरिचित हैं ।

(v) 'पंज ठग चूरां गदिए दा रहा (राह) भही (भी) लुट लइंदे (लैन्दे)' । डा० ग्रियर्सन ने इस पंक्ति का अर्थ यूं किया है : (Ah, five robbers and thieves waylay the Gaddi in his path. स्पष्ट है, कि यह वाक्य डोगरी वाक्य की प्रकृति के अनुकूल नहीं है । चूरां लुट लहंदे, गदिए दा राह भी लुट लहदे (लैंदे) डोगरी भाषी को बड़ी ही विचित्र उक्तियां लगेंगी ।

(vi) इसी तरह 'तारे गेंदी (गिन्दी) नू (नूं) र'एन (रैन) विहावै ।' बड़ी विचित्र वाक्य-रचना है । अंग्रेजी में इसका अर्थ दिया गया है : I pass the night counting the stars. 'मैं तारे गिनते रात बिता देती हूं ।'' डोगरी में इसका रूप होता है : —'तारे गिनदेआं रैन बिहाई छोड़ां ।'' डोगरी कवि यश शर्मा के एक गीत की प्रथम पंक्ति है :

तारे गिनदेआं रात बिहाई छोड़ी ।

इन दोनों अभिव्यक्तियों में जो असाधारण अन्तर है, वह अत्यन्त स्पष्ट है :

''तारे गेंदी नू रैन विहावे'' और
''तारे गिनदेआं रैन बिहाई छोड़ी'' ।

पहली अभिव्यक्ति निश्चित रूप से डोगरी भाषा की तर्जमानी नहीं करती । और फिर इस सब के ऊपर ''इच्छक और मुहब्बत'' की ये चौंका देने वाली उक्तियां, जिन से डोगरी लोकगीत परिचित ही नहीं हैं ।

इस लोकगीत के आधार पर डा. ग्रियर्सन ने अमीर खुसरो और मिस्टर कैरे के मतों की अवहेलना करके घोषणा की कि डोगरी पंजाबी

को उभारा है। कितने दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी-पंजाबी के भाषा-विद्वानों ने आंख, कान मूंद कर इस घोषणा को दुहरा-दुहरा कर अपने कर्त्तव्य को सम्पन्न कर लिया।

डा. ग्रियर्सन ने ऐसा क्यों किया ? कुछ लोगों का विचार है कि वह अंग्रेज़ था और भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य के हितों से प्रभावित था। यह शंका निर्मूल भी हो सकती है, लेकिन इस के साथ ही यह भी एक यथार्थ है कि सर ग्रियर्सन द्वारा किए गए इस व्यापक सर्वेक्षण के सभी निष्कर्ष अन्तिम नहीं माने जा सकते।

पंजाबी भाषा के कई विद्वान् जैसे स० प्यारासिंह पदम, डा. हरदेव बाहरी, डा. तेजासिंह, स० राजिन्दर सिंह आदि भली भांति जानते हैं कि ग्रियर्सन ने पश्चिमी पंजाबी को "लहन्दा" नाम देकर एक स्वतन्त्र भाषा मान कर केवल तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा है।

डा० हरदेव बाहरी अपने लेख "पंजाबी ते लहन्दी" में (पंजाबी दुनिया : मार्च-अप्रैल १९६५ सफा २१५) पर लिखते हैं :

"असी पंजाबी ते लहन्दी बोलन वाले जानदे हां कि पंजां दरिआवां दे इस भूभाग दी भाषा इक्को है। दो भाषावां दा विचार करना हकीकत तों दूर है . ...। ए सवाल कदीं उठ नहीं सकदा, सिवाए ग्रियर्सन दे दिमाग दे कि उन्हां दी भाषा, लहन्दी हुंदियां होइयां बी पंजाबी नहीं है। सानूं ते कोई फर्क नहीं दिसदा।"

इस बारे में डा. तेजासिंह के मत का उल्लेख इस लेख के शुरू में हो चुका है। इसी तरह हिन्दी के भाषा-विज्ञानी डा० ग्रियर्सन के द्वारा किए गए भारतीय आर्य भाषाओं के बाहरी तथा आन्तरिक उपशाखाओं (Inner & Outer Circles) में विभाजन को सही नहीं मानते।

धीरेन्द्र वर्मा इस विषय में लिखते हैं : "ग्रियर्सन तथा चैटर्जी के समुदाय के विभागों की तुलना रोचक है। साधारणतया चैटर्जी महोदय का वर्गीकरण अधिक स्वाभाविक मालूम होता है।

डा० भोला नाथ तिवारी (हिन्दी भाषा—सफा १०६ पर) लिखते हैं, डा० सुनीति कुमार चैटर्जी ने इन तीनों (अर्थात्--डा० ग्रियर्सन द्वारा दिए गए त्रिवर्गीय भाषा-विभाजन) की ही आलोचना की है। ....ग्रियर्सन जिन बातों के आधार पर बाहरी भीतरी वर्गीकरण को स्थापित करना चाहते थे, वे बहुत संपुष्ट नहीं हैं।

लेकिन इन जागरूक मनीषियों ने डोगरी को आर्य परिवार में इतना महत्वपूर्ण नहीं समझा कि उसके विषय में कुछ मौलिक जानकारी प्राप्त करना वे उचित समझते।

इसलिये ये लोग इस बारे में ग्रियर्सन की ही बात को दुहरा कर सन्तोष कर लेते हैं ! परन्तु इस से बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा, कि अप्रामाणिक साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकालने की एक गलती को ही सारा मनीषी-समाज आंखें मूंद कर रटता-दुहराता चला जाए।

कई भाषाओं में भी उपनिवेशवादी प्रवृत्ति काम करती है। अपने साम्राज्य के गौरव के मद में वे कई बार अविकसित भाषा-बोलियों को अपनी उपभाषा कह कर इस तरह बांध रखना चाहती हैं कि न वे स्वयं उन्हें विकसित करने का यत्न करती हैं, और न ही उन्हें स्वयं अपने विकास के लिए यत्न करते देखना चाहती हैं। पंजाबी और डोगरी में उसी तरह, शोषक तथा शोषित का दुर्भाग्यपूर्ण सम्बन्ध रहा है।

पंजाबी भाषा की स्वतन्त्रता के समर्थक भाषा-विद् डोगरी को अविकसित गंवारू भाषा कह कर उस के स्वतन्त्र विकास को पंजाबी के विरुद्ध एक विद्रोह समझते हैं। देखिए—"पंजाबी दुनिया" मई १९६५ के अंक में प्रो. बाहरी का लेख "डोगरी-उपभाषा"। प्रो० बाहरी पद्मभूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा पर इस लिए रुष्ट हैं कि उन्होंने ही सर्वप्रथम डोगरी को एक स्वतन्त्र भाषा कह कर इस विद्रोह के बीज बोए हैं ! वे आगे लिखते हैं :

"जम्मू दे कुझ उत्साही भाषा-विज्ञानी इह फैसला घर ही कर बैठे हन कि चाहे आपने ही कोई नवें भाषा-विज्ञानक नेम क्यूं न घड़ने पैन किसे तरां बी इह सिद्ध करके दस्स देना है, कि डोगरी घटोघट पंजाबी दी उपभाषा नहीं। उह जिस हाऊ में दा शिकार हो के इस बारे सुचेत हुन्दे होई बी लोकां दिआं अते केन्द्री सरकार तीक रसाई रखन वालियां दिआं अक्खां बिच घट्टा पा के, केन्दरी सरकार तों डोगरी नूं पंजाबी नालों अलहिदा दस के, इक बक्खरा स्थान दुआन दिआं आहरां बिच हैन। पता नईं उन्हां दी ए मृगतृष्णा कदों असली रूप धारदी है। मेरी जाचें इन्हां भाषा-विज्ञानियां दी गल्ल, किसे झूठी गल्ल नूं सौ बार कहन तों बाद सच तुल्ल मनाउना है।"

प्रो० बाहरी के इस रोष पर हमें आश्चर्य नहीं क्योंकि हम आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक सभी क्षेत्रों में इस शोषक मनोवृत्ति के काफी देर तक निरीह शिकार रहे हैं।

इसी मनोवृत्ति का दूसरा पहलू भी कम रोचक नहीं, जहां पंजाबी की उप-भाषा कह कर, डोगरी के प्रति वैसा ही अपनत्व दिखाया गया है जैसा कोई घर के नौकर के प्रति दिखाता हुआ उसके गंवारूपन की, सरलता की ऐसी सराहना करे, कि यथार्थ

की एक आंख ही फोड़ दी जाए। इस मनोवृत्ति का उदाहरण देखिए—(पंजाबी दुनियां, मार्च अप्रैल १९६५ सफा ३९८ पर प्रकाशित श्री राजिन्दर सिंह का लेख "पंजाबी दिआं उपभाषावां")। विद्वान् लेखक, लेख के अन्त में डोगरी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :

"कांगड़े, शिमले अते जम्मू दी बोली नूं डोगरी जां पहाड़ी आखिआ जांदा है। डा० ग्रियर्सन अनुसार इस दे कण्डियाली, भटियाली अते कांगड़ी तिन्न मुख्ख रूप हन। इस दे लोक गीतां बिच अजब जिही मिठास हुंदी है जो पंजाबी दे दिल नूं धू पाउंदी है। मसलन :

"मैं गलानियां सच वे, बांके निआ चाचूआ।
मिझो वी लेई चल कढ वे, माढ़े बांके ने चाचूआ॥

यह लोक गीत आप में से बहुतों ने सुना-पढ़ा होगा। जो दो पक्तियां यहां डोगरी (पहाड़ी) की, चित्त को छू लेने वाली मिठास को दिखाने के लिए दी गई हैं, उन्हें देख कर क्या ऐसा नहीं लगता कि किसी पहाड़ी सरल सुन्दरी का सहज रूप पंजाबी वेश भूषा तथा पंजाबी 'मेक अप' से, बड़े भद्दे ढंग से बिगाड़ दिया गया है। मूल गीत के शब्दों को किस प्यार भरी उपेक्षा से विकृत किया गया है।

"औं गलानिआं सच ओ" : को बना दिया है "मैं गलानिआं सच वे।" 'माढ़े बांकू देआ चाचुआ" की जगह बांकू नेआ चाचूआ कितना बड़ा मजाक है। और इस मूढ़ अनुराग की पराकाष्ठा—"लेई चल कढ वे" में देखिए। मूल गीत के शब्द हैं : मिगी बी—(वी नहीं) लेई चल कच्छ वो—और "कच्छ वो" के स्थान पर "कढ वे" कहने में केवल दो शब्दों के प्रयोग का अन्तर नहीं है—दो विभिन्न संस्कृतियों की मौलिक धाराओं का अन्तर है। "कच्छ लेई चल" का सीधा सरल अर्थ है अपने पास ले चल। दुखी बहू अपने इकलोते बेटे बांकू के चाचू अर्थात् पिता से गीत के माध्यम से आग्रह करती है कि यहां पीहर में सास और ननद के ईर्ष्या-द्वेष के कारण उस का जीवन अत्यन्त दुखी हो गया है, तुम आकर मुझे भी अपने साथ ले जाओ।"

श्री राजिंदर सिंह ने इतने सरल भाव को एक दम उल्टा रूप दे दिया है 'कढ वे" कह कर। "कढ वे" का अर्थ है भगा कर ले जाओ। अपनी विवाहिता स्त्री को ही भगा कर ले जाने की बात कितनी अनुचित लगती है! इतना मौलिक अन्तर हो जाने पर भी पहाड़ी गीत के बोल सरदार साहब के कलेजे को "धू पाने" में समर्थ हुए हैं। यह कैसा प्यार है!

प्रो० बाहरी की खीज में और इस प्यार में आप डोगरी के लिए किसे ज़्यादा खतरनाक समझेंगे?

डोगरी ने एक दयनीय बेबसी में इन दोनों तरह के निर्मम आघातों को चुप रह कर सहा है। लेकिन उसका यह दुर्भाग्य भी उसे मिटा नहीं सका।

हां, उस की प्रगति को इस से गहरा आघात अवश्य लगा। लेकिन स्वदेश में व्याप्त नवयुग की इस स्वर्णिम प्रभात में, डोगरी भी दूसरी कई पिछड़ी हुई भाषाओं के साथ, अपने चिरकालीन स्वप्नों को साकार कर रही है। डोगरी के इस साहित्यिक नव जागरण में, उसे अपनी उपभाषा मानने वाली पंजाबी ने कितना योग दिया है ? उप-भाषाएं तो मुख्य भाषा की शाखाएं होती हैं—शांखाएं सूखी रहें, भला इस में मूलाधार को क्या प्रसन्नता होगी ?

हिन्दी ने ब्रज, अवधी आदि को यदि अपनी सहोदरा उपभाषाएं स्वीकार किया था तो उनकी साहित्यिक प्रगति को अपनी प्रगति माना था। क्या आज तक हिन्दी भाषा तथा साहित्य का कोई ऐसा प्रामाणिक इतिहास लिखा गया है, जिसमें अवधी तथा ब्रज के सहस्रों साधकों की साधना का गौरव-पूर्ण उल्लेख न किया गया हो ? हिन्दी के विद्यार्थी के जहन में, हिन्दी के महारथियों का नाम लेते ही प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, तथा प्रेमचन्द आदि से भी पहले चंदबरदाई, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, रसखान, जायसी और बिहारी आदि के भव्य चलचित्र क्यों घूम जाते हैं ?

क्या हिन्दी का एक भी प्रतिनिधि काव्य-संग्रह ऐसा दिखाया जा सकता है जिसमें भक्ति-काल तथा रीति काल के प्रतिनिधि कवियों की काव्य-साधना के नमूने न दिए गए हों ?

और क्या पंजाबी भाषा और साहित्य का कोई ऐसा निष्पक्ष इतिहास, काव्य संग्रह, कथा-संग्रह, लेख-संग्रह, अथवा एकांकी-संग्रह दिखाया जा सकता है, जिसमें उसकी उप-भाषाओं का भी ससम्मान उल्लेख हुआ हो ? नहीं। लेकिन यह इतनी उपेक्षा क्यों दिखाई गई है ? क्या इसलिए कि डोगरी भाषी लोगों की धरती को पंजाब में केवल तीन रूपों में पहचाना जाता है, (i) उनके घरों में काम करने वाले मुंडुओं की धरती, (ii) पंजाब की मण्डियों में काम करने वाले दृढ़वपु पांडियों की धरती। (iii) तथा बेहुनर और बेइल्म होने के कारण फौज के लिये रंगरूट देने वाली धरती।

डोगरी का यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य रहा है कि अपनी भौगोलिक परिधि में भी उसे पंजाबी जैसी उग्र-स्वभाव वाली तथा अहं भावना से पूर्ण एक समृद्ध भाषा के, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रभुत्व में दबे रहने की लाचारी बनी रही है। लाचारी के इस अन्धेरे दुर्ग की दृढ़ इमारत में कुछ दरारें १९४७ ई० में पड़ीं, जब समस्त देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ रियासत में भी जनतंत्र की संजीवनी हवाएं

चली थीं। उस दुर्ग का बहुत बड़ा अंश गिरा १९६६ ई० में, जब कांगड़ा-कुल्लू के प्रदेश हिमाचल में जा लगे।

इस प्रशासनिक परिवर्तन से, नए हिमाचल प्रदेश में डोगरी-पहाड़ी भाषा-बोलियों की एक कैद खत्म हुई। पूर्वी पंजाब प्रदेश को द्विभाषी राज्य घोषित करके, हिन्दी तथा पंजाबी "ज़ोनों" (Zones) में बांट लेना सियासी स्वार्थ का एक अत्यन्त निंदनीय गठजोड़ था। क्योंकि पंजाब को भाषायी दृष्टि से सर ग्रियर्सन ने भी त्रिभाषी प्रदेश स्वीकार किया था। इस विषय में उनका कथन इस प्रकार है :

To its North and North-East Punjabi is bounded by the Pahari of the lower ranges of the Himalayas. It (Punjabi) hardly extends into the hill country. On the east it has various forms of Western Hindi, vernacular Hindostani in east Amballa and Baugru spoken in the country immediately to the west of Jamna. On the South it has the Bangari and the Bikaneri dialects of Rajsthani spoken in West Hissar & Bikaner. Boundry between Panjabi and all these Languages is very fairly defined although, of course, there is a certain amount of merging from one language to another. On the north there is a distinct dialect of Panjabi, the Dogri, which is interemediate between Standard Punjabi and Pahari of the lower Himalayas. To the west of Punjabi lies the Lahanda or Western Panjabi Language.

(Grierson on Panjabi)
(Introduction Page 1-2)

लेकिन राजनीतिक क्षेत्र की, दो स्थानीय प्रतिद्वन्द्वी दलबन्दियों ने डोगरी-पहाड़ी भाषाओं की सत्ता की पूर्ण अवहेलना करके उसे, अपने ही घर में, प्रवासिनी बना दिया।

हिन्दी और पंजावी से त्रस्त तथा शोषित इन डोगरी-पहाड़ी भाषाओं की दशा आज उस मासूम फाख्ता की सी है जिसे खाने के लिए एक बाज़ ऊपर चक्कर लगा रहा है तथा एक बिडाल नीचे से सरकता हुआ आ रहा है।

लेकिन लगता है कि आंधी-तूफानों के ये 'दुर्दिन' अब छटने वाले हैं। गत तीन

दशकों में डोगरी ने, इस विशाल डोगरा प्रदेश के एक सीमित भूभाग में तपस्या करके, पअनी साहित्यिक दरिद्रता के अन्धेरे में साधना के जो दीप जलाए हैं, उनकी लौ, स्वार्थी सियासत की तूफानी आन्धियों की हुंकारों पर मुस्कराती हुई जगमगा रही है । यह अविश्वसनीय 'मिरकेल' एक ऐसा तथ्य है जिसके कठोर चट्टानी धरातल पर कई ग्रियर्सन सर पटक कर भी इसे झुठला नहीं सकेंगे ।

आप कहेंगे यह भी भावुकता तथा आवेश की बातें हैं। इस से तो वैज्ञानिक सत्य की पुष्टि नहीं होती । आप का कहना ठीक है। यह आवेश हमारे लिए कितना ही सहज क्यों न हो, लेकिन ऐसे विषयों में तो तर्कपूर्ण विवेचन से ही किसी निष्कर्ष तक पहुंचना उचित होता है ।

वैसे तो ग्रियर्सन ने भी डोगरी की विशिष्ट सत्ता का समर्थन करने वाले कई तत्वों का उल्लेख किया है, जैसे—

(1) Indeed, it is a curious fact that the Dogri shows peculiarities of pronounciation, which also exist in Bagri.

(2) Dogri has an elphabet of its own.

(3) The conjugation of the verb presents a few irregularities.

(4) The future in Dogri has several forms which are strange to the standard Punjabi.

(5) The post-position of the accusative and dative in Dogri is generally ki or di.

उन्होंने स्पष्ट किया है कि डोगरी की अपनी एक स्वतंत्र लिपि है जिस का प्रयोग दो रियासतों, जम्मू-कश्मीर तथा चम्बा में होता रहा है । स्वतंत्र लिपि की सत्ता इस बात की सूचक है कि डोगरी ने अपने आप को कभी भी पंजाबी की उपभाषा स्वीकार नहीं किया । डोगरी की भाषा-शास्त्रीय तथा ध्वन्यात्मक विशेषताओं का यथोचित अध्ययन-विवेचन सर ग्रियर्सन के लिए संभव नहीं था ।

डोगरी के क्षेत्र में जिस तरह के लोग उनको सहायक रूप में मिले थे उनकी क्षमता की एक झलक आपने उस लोकगीत में देख ही ली है । डोगरी का भाषा-शास्त्रीय विवेचन भी तो डा० ग्रियर्सन के लिए उन्हीं लोगों ने प्रस्तुत किया होगा । ग्रियर्सन स्वयं तो भारत की सभी भाषा-बोलियों के ज्ञाता-पारखी नहीं हो सकते थे ।

आइए, अब इस प्रश्न का दूसरा पक्ष भी देखें जिसका उल्लेख हम पीछे अमीर खुसरो तथा पादरी विलियम करे के मतों का उद्धरण दे कर आए हैं।

१९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, जॉन बीम्स (John Beams) नाम के एक अंग्रेज भाषा-विज्ञानी की एक छोटी, लेकिन महत्वपूर्ण पुस्तक छपी थी—

'An Outline of Indian Philology'। इससे पहले श्री बीम्स इस क्षेत्र में "Comparative Grammar of Modern Aryan Languages" आधुनिक आर्य भाषाओं का तुलनात्मक भाषा शास्त्र (तीन भाग) जैसी महत्वपूर्ण कृति दे चुके थे। इन रचनाओं से स्पष्ट है, कि श्री बीम्स ने इस विषय पर अधिकार पूर्ण योग्यता से कलम उठाई। वह सर ग्रियर्सन से किसी प्रकार भी कम नहीं थे।

"भारतीय भाषा-विज्ञान की रूप-रेखा" नामक पुस्तक में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उल्लेख करते हुए श्री बीम्स लिखते हैं:

The carlist representation of this (Indic) class is the language of the Vedas, the most ancient recorded form of Sanskrit. The languages of this (Indic class) at the present day are the following :

अर्थात् वर्तमान काल में इस वर्ग की प्रमुख आर्य भाषाएं ये हैं :

1. Hindi (हिन्दी)	2. Bangala (बंगला)
3. Punjabi (पंजाबी)	4. Sindhi (सिंधी)
5. Maratha (मराठा)	6. Gujrathi (गुजराती)
7· Nepalese ((नेपाली)	8. Uriya (उड़िया)
9. Assamese (आसामी)	10. Kashmiri (कश्मीरी)
	and 11. Dogra और (डोगरा)

डोगरा (अर्थात् डोगरी) के क्षेत्र की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं:

In the mountain ranges between the Punjab and the Valley of Kashmir the Dogra dialect or dialects are spoken.

अर्थात्—पंजाब और कश्मीर घाटी के मध्य में स्थित पहाड़ी प्रदेश में डोगरा (डोगरी) नाम की बोली या बोलियां प्रयोग में आती हैं।

यहां "डोगरा" के लिए जान बीम्स द्वारा प्रयुक्त (Dialect) (अर्थात् बोली) शब्द से यह नहीं समझना चाहिए कि इन्होंने भी सर ग्रियर्सन के ही मत की पुष्टि की है। उस सूरत में जॉन बीम्स पंजाबी और डोगरी को इस सूची में अलग-अलग स्थान न देते। बोली (dialect) शब्द का प्रयोग बीम्स ने जिस अर्थ में किया है, उसे

समझने के लिए हम यहां विख्यात भाषा-विज्ञानी, (पद्मभूषण) डा० वर्मा के मत को उद्धृत करते हैं।

डा० वर्मा का एक लेख डोगरी संस्था की त्रैमासिक पत्रिका "नमीं चेतना" के प्रथम अंक में, जुलाई १९५५ में प्रकाशित हुआ था। लेख का शीर्षक था—

The place of Dogri in the Languages of India.

—भारत की भाषायों में डोगरी का स्थान। डा० महोदय ने उस लेख में डोगरी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है :

Of the seven families of Languages in India the Dogri Language accupies an important place philologically, for it is a frontier language and in a way, could be classed among the frontier languages of India.

My speaking of Dogri as Dogri Language may be condemned as a philological heresy' by the philologist for the 'The Dogra or Dogri dialect of Punjabi (Greirson, L. S. I. Vol. IX page 637) is supposed to be the established characteristic of Dogri.

If Dogri is a dialect of Panjabi why should it be called the Dogri Language ? Now it must be admitted that in a sense Dogri must be called a dialect. What is that sense ? In the sense of non-standardization. For instance, even for the word 'was' Dogri has three current words viz. था, सा, and हा (more correctly आ)

Such a phenomenon will be impossible in a Language proper, like English, or Hindi. But granted that from the non-standardization point of view Dogri must be called a dialect, can we proceed further and call it a dialact of Panjabi or of any other Pahari Language ? For, to be a dialect is one thing and to be a dialect of another language another thing.

Dogri must be taken as an independent dialect and not a dialect of any other language like Panjabi or Pahari.

The test of a dialect when taken as the form of a

Language is 'Spontaneous intellegibility'—the dialect must be understood (by the speaker of its main language) without any effort or interpreter. In the light of this test Dogri cannot be called the dialect of any other language. Hence it is more reasonable to call Dogri a language in the sense of an independent dialect."

—अर्थात् भारत में प्रयुक्त सात भाषायी परिवारों में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से डोगरी भाषा का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि सीमान्त की भाषा होने के कारण इसे हम भारत की सरहद्दी भाषाओं में गिन सकते हैं। मैंने डोगरी को जो एक भाषा कहा है, संभव है कुछ भाषा विज्ञानी इसे केवल एक हठपूर्ण उक्ति कहें क्योंकि उनके मत में ग्रियर्सन के द्वारा डोगरी को पंजाबी की उपभाषा घोषित कर दिए जाने से उसका स्वरूप सदा के लिए निर्धारित हो चुका है। आलोचक पूछ सकते हैं कि जब डोगरी पंजाबी की उपभाषा (Dialect) है तो उसे 'भाषा' क्यों कहा जाए ?

एक तरह से मैं भी सहमत हूं, कि डोगरी को एक दृष्टि से बोली (dialect) ही कहना उचित होगा। वह दृष्टि है डोगरी के कई रूपों में निश्चयात्मकता का न होना। जैसे हिन्दी 'था' के लिए डोगरी में तीन रूपों का एक समान चलन है, जैसे—था, सा और हा (जिसे बोला जाता है 'आ')।

यह अस्थिरता अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी जैसी विकसित भाषाओं में संभव नहीं। लेकिन इस अनिश्चयात्मकता को देखकर यदि डोगरी को हम एक बोली (dialect) कहें तो क्या इसका गह भी अर्थ होगा कि डोगरी पंजाबी या किसी पहाड़ी भाषा की बोली (dialect) है? क्योंकि 'बोली' होना एक बात है और किसी भाषा की बोली होना बिल्कुल दूसरी बात।

'बोली' से जब हमारा अभिप्राय किसी दूसरी केन्द्रीय भाषा की उपभाषा होना होता है तो वहां उसका स्वरूप निर्धारित करने की एक ही कसौटी होती है : सहज सुबोधता अर्थात्—मुख्य भाषा बोलने वाले उस बोली को बिना किसी प्रयत्न या अनुवादक की सहायता के समझ सकें। इस परीक्षण के प्रकाश में डोगरी को पंजाबी अथवा किसी दूसरी भाषा की उपभाषा नहीं कहा जा सकता। इसलिए एक स्वतन्त्र बोली होने के कारण डोगरी को हम एक भाषा की संज्ञा भी दे सकते हैं।

भाषा तथा उपभाषा के स्वरूप को निर्धारित करने वाले कोई अन्तिम लक्षण अभी तक नहीं किये जा सके हैं। श्री जान बीम्स ने भी इस विषय का विवेचन किया है। वे लिखते हैं :

Much discussion has taken place on the question—what constitutes a language and what a dialect ? What amount of deviation from the classical or central standard of a language is compatible wi'h merely dialectic variations and at what point is the boundry passed and a new language constituted ?

It appears probable that no determination will evar be arrived at on this sabject, because it is one on which it is impossible to lay down a general rule.

Geographical situation, political and physical accidents, education, habits, religion, all have their bearing on language.

—अर्थात् इस विषय में काफी तर्क-वितर्क हुआ है कि भाषा क्या है और बोली या उपभाषा क्या है तथा यह कि केन्द्रीय अथवा प्रमुख भाषा से कितनी मात्रा तक अन्तर रहते किसी बोली को उसकी उपभाषा माना जाए तथा किस सीमा-रेखा को पार करने पर उसकी, भाषा के रूप में स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर ली जाए।

मेरे मत में इस विषय पर कभी किसी अन्तिम रूप में सर्व-स्वीकृत मत तक हम नहीं पहुंच पाएंगे क्योंकि इस बारे में सामान्य नियम निर्धारित करना सम्भव नहीं है। भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक तथा दूसरी परिस्थितियां, शिक्षा, स्वभाव, तथा धार्मिक आस्था—ये सभी बातें भाषा के स्वरूप को प्रभावित करती हैं।" जॉन बीम्स इस बारे में आगे लिखते हैं :

1. The test of mutual intelligibility is a very unsafe one as it depends on the intellegence of individuals.
2. The fact that a form of speach is used only by a small number of people is no argument against its being really an independent language.
3. It is a mistake to suppose that rustic dialects are degenrate or debased forms of the language. For from being debased they often retain early and pure forms of words which have dropped out of the cultivated dialect.

4. Vocabulary also determins the separate entity of a language, even if the grammatical forms are almost identical. As is the case with Hindi and Panjabi. Thought the latter has many words in common with Hindi yet it retains so many Sanskrit words which have dropped out of Hindi and vice-vera and has so many purely local terms of its own that the vocabulary is very different from that of Hindi. And again mutual intellegibility does not exit.

(An Introduction to Indian Philology, Page 33)

१. अर्थात्---पारस्परिक सुबोधता का तथ्य भी बड़ा भरोसे का नहीं है क्योंकि इसका संबन्ध व्यक्तियों की बौद्धिक क्षमता से है।

२. किसी बोली को बोलने वालों की संख्या अधिक नहीं है, इस आधार पर उसे स्वतन्त्र बोली मानने से इन्कार करना तर्क-संगत नहीं।

३. यह कहना या सोचना बिल्कुल निराधार है कि कोई बोली देहाती रूप रंग लिए होने पर अवश्य ही किसी भाषा का विकृत रूप होगी। विकृत होने के स्थान पर ये बोलियां प्रायः शब्दों को उनके परम्परागत विशुद्ध रूप में सुरक्षित रखती हैं, जबकि संस्कृत अर्थात् विकसित बोलियों में से वे शब्द प्रायः बहिष्कृत हो जाते हैं।

४ बोली का शब्द-समूह भी उसकी स्वतन्त्र सत्ता का प्रमाण होता है चाहे कुछ भाषा-शास्त्रीय रूपों में (दूसरी भाषा-बोली से) उसकी किसी मात्रा में समानता ही दिखाई देती हो। जैसे हिन्दी तथा पंजाबी में। यद्यपि पंजाबी की शब्दावली में बहुत से शब्द हिन्दी के भी हैं, फिर भी पंजाबी में संस्कृत के कई ऐसे रूप-प्रयोग अभी भी चलते हैं, जो हिन्दी में नहीं दीखते। दूसरे पंजाबी के शब्द-कोष में उसके स्थानीय शब्द इतने अधिक हैं, कि दोनों भाषाओं की शब्दावलियां सर्वथा भिन्न प्रतीत होती हैं। और फिर पारस्पारिक सुबोधता का अभाव भी एक प्रमुख तत्व है।"

कितने दुःख की बात है कि आज तक डोगरी की सत्ता निर्धारित करने के लिए डा० ग्रियर्सन के अन्धानुयायियों में से किसी ने भी इन सामान्य सिद्धान्तों पर डोगरी का परीक्षण नहीं किया। उन्होंने इस विषय में डा० सिद्धेश्वर वर्मा तथा जॉन बीम्स जैसे ख्यातनामा भाषा-विज्ञानियों के मतों की अवहेलना की भी धृष्टता की है।

और यह जानते हुए भी कि जहां डा० ग्रियर्सन इस भाषायी सर्वेक्षण के सिलसिले में हमारी रियासत में अत्यन्त अल्पकाल के लिए ठहरे थे वहां डा० वर्मा डोगरी के प्रदेश में लगभग ३० वर्ष तक, वहां के सरकारी कालेज में प्राध्यापक रहे और इस अर्से में उन्होंने इस प्रदेश की बोलियों के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान कार्य किया उसकी तुलना भला डा० ग्रियर्सन के इस काम से कैसे की जा सकेगी, जिसे सम्पन्न करने के लिए उसे अपने स्थानीय सहयोगियों तथा कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता था।

इस अन्तर का एक कारण यह भी रहा होगा, कि डा० ग्रियर्सन का भाषायी सर्वेक्षण तो प्राय: भारत के सभी प्रमुख पुस्तकालयों त था विद्या-केन्द्रों में उपलब्ध था और (पद्म-भूषण) डा० सिद्धेश्वर वर्मा का डोगरी सम्बन्धी विवेचन बहुत हद तक अज्ञात ही रहा। उसे उतना प्रचार न मिला।

लेकिन हिन्दी तथा पंजावी के भाषा-विज्ञानियों में कौन ऐसा है जो उनके व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व से अपरिचित होगा, तथा यह न जानता हो कि भारत सरकार द्वारा सम्मानित इस ख्याति-लब्ध भाषा-विज्ञानी ने अपने जीवन के बहुत महत्वपूर्ण वर्ष डोगरी पहाड़ी बोलियों के प्रदेश में ही गुज़ारे हैं। अत: डोगरी के विषय में, ग्रियर्सन के वाद उनके द्वारा होने वाले इस अनुसंधान के निष्कर्षों को जानना-मानना भी आवश्यक है।

अमीर खुसरो, जॉन बीम्स तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा, इन मनीषियों के द्वारा घोषित निष्कर्षों का पलड़ा क्या अकेले डा० ग्रियर्सन के घोषित मत से किसी प्रकार हल्का हो सकता है? जबकि यह भी दिखाया जा चुका है, कि ग्रियर्सन ने डोगरी को पंजावी की उपभाषा कह कर और लंहदी को पंजावी से स्वतन्त्र भाषा घोषित कर के किसी तत्कालीन सयासी मसहलत को चाहे पूरा किया हो, तथ्यों के साथ न्याय नहीं किया। डोगरी को स्वतंत्र भाषा-वोली कहने वालों की सूची यहीं समाप्त नहीं हो जाती प्रो० गौरीशंकर (M. A.,B. Lit. Oxen) एक प्रतिष्ठित विद्वान् तथा भाषा विज्ञानी हैं। इन्होंने ही १९३१ ई० में Indian Linguistics की vol. I, II और IV में प्रकाशित अपने लेख : डोगरी का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन (Grammatical aspects of Dogri Language) में पहली वार डोगरी के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया था। १९३४ ई० में प्रो० गौरी शंकर जी ने गीता का डोगरी गद्य में अनुवाद किया जो इस वात का सूचक है कि वे डोगरी को कितना महत्व देते थे। सन् १९६५ ई० में इन्होंने गोहाटी (आसाम) में होने वाली All India Oriental Conference के चौदहवें अधिवेशन में 'Some salient features of Dogri Language"—शीर्षक से एक महत्वपूर्ण लेख पढ़ा था। इस लेख में उन्होंने डोगरी तथा पंजावी में होने वाले कुछ मौलिक अन्तरों की चर्चा करते हुए अन्त में लिखा है :

Dogri and Panjabi, though different in phonetics and structures and the more so in vocabulary, have the great difference in the tone, the credence, the accent, the rythem, the stress and the music of the tongue.

अर्थात्—"डोगरी तथा पंजाबी, स्वरोच्चारण, सामान्य रूप-विन्यास तथा शब्दावली की दृष्टि से तो एक दूसरे से भिन्न हैं ही, इनमें और गहरा भेद दिखाई देता है ध्वनि, स्वराघात, ताल-लय, उच्चारण में आने वाले विशिष्ट उतार चढ़ाव, तथा संगीतात्मकता आदि के कारण।"

डोगरी की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने वाले भाषा-विज्ञान के स्थानीय विद्वानों में श्री बंसीलाल गुप्ता, लेखक—"डोगरी भाषा और व्याकरण", श्री श्यामलाल शर्मा, श्री तैजराम सहचर तथा श्री धर्मचन्द्र प्रशान्त आदि के मतों का उल्लेख करना यहां आवश्यक नहीं क्योंकि पंजाबी के कई विद्वान् उन्हें डा० सिद्धेश्वर वर्मा का ही अनुगामी मानते हैं। वैसे भी घर के जोगी जोगड़े कहलाते हैं।

लेकिन, "हिन्दी शब्दानुशासन" जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रचयिता, भाषा-शास्त्र तथा भाषा-विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान्, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी तो डा० वर्मा के अनुगामियों में से नहीं हैं। डोगरी के विषय में आचार्य वाजपेयी का मत है कि: "डोगरा प्रदेश की अपनी प्राकृत थी, जिसका विकास आज की डोगरी भाषा है। पंजाब से मिला हुआ डोगरी प्रदेश है, यानी डोगरी और पंजाबी भाषा की सीमा मिलती है, और इन दोनों में वही अन्तर है जो पंजाबी और हिन्दी में या बंगला और उड़िया में है। यानी कुछ तत्व एक से हैं। पर शेष सब अलग-अलग। रूप, रंग, चाल ढाल आदि में स्पष्ट अन्तर है। बंगला भाषा से परिचित व्यक्ति उड़िया भाषा तुरन्त सीख समझ लेगा। परन्तु भाषा भेद तो है ही। पंजाबी भाषा से डोगरी भाषा को पृथक् करने वाले तत्व हैं—उसके पृथक् प्रत्यय, पृथक् क्रियारूप, पृथक् अव्यय, और पृथक् कारक-विभक्तियां।

इस तरह, एक ओर है डा० ग्रियर्सन का एक पुराना लेकिन आज तक बहु प्रचारित मत कि डोगरी पंजाबी की उपभाषा है और दूसरी ओर हैं अमीर खुसरो, विलियम केरे जॉन बीम्स, पद्म-भूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा, प्रो० गौरीशंकर तथा अचार्य किशोरी दास वाजपेयी का अपने अपने तौर पर निर्धारित मत कि डोगरी पंजाबी से पृथक् एक स्वतन्त्र भाषा बोली है।

इस तथ्य को प्रो० बाहरी भी मानते हैं। उन्होंने अपने उसी लेख में लिखा है:

"सिवाए डा० ग्रियर्सन अते कुझकू पंजाबी साहित दे इतिहास कारां अते भाषा विज्ञानियां दे होर कोई भाषा दा माहिर डोगरी उपभाषा नूं पंजाबी भाषा-समूह दी उपभाषा मन्नण लई त्यार नहीं।"

**
**

सहायक ग्रन्थ-सूची

१. Grierson on Panjabi, (Language Dept. Patiala, Panjab.)

२. An Introduction to Indian Philology.
—John Beams.

३. भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड १—भाग १
अनु० उदयनारायण तिवारी

४. सम्मेलन पत्रिका (भाग ४९–सं-१) पौष, फाल्गुन, शाक १८८४

५. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (१६वां भाग) ना० प्रा० सभा काशी

६. नमीं चेतना (अंक-१९५५ ई०)

७. पंजाबी दुनियां (भाषा अंक—मार्च—अप्रैल १९६५)

८. हिन्दी भाषा—डा० भोलानाथ तिवारी

९. हिन्दी साहित्य, उद्भव और विकास—राम बहोरी शुक्ल, भगीरथ मिश्र

१०. हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा

११. सप्त सिन्धु (उपभाषा विशेपांक) नवम्बर, दिसम्बर, (६५)
जनवरी १९६६

१२. Some Salient Features of Dogri.
--Prof. Gauri Shankar M. A., B. Litt.

१३. डोगरी भाषा और व्याकरण—श्री बंसी लाल गुप्ता

**
**

कश्मीरी कविता में रामकथा काव्य

डा० ओंकार कौल

कश्मीरी भाषा में १८ वीं शताब्दी तक रामाख्यान से सम्बन्धित कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है। इसके कई कारण हैं। ललेश्वरी के 'वाखों' और शेख नूरुद्दीन वली (१४ वीं शती) के 'श्लोकों' में कश्मीरी भाषा का उत्कृष्ट रूप मिलता है जो जैनलाबुद्दीन 'बड़शाह' के शासन काल (१४२०—१४७० ई०) तक खूब पनपा। बड़शाह के शासन काल के पश्चात् फारसी के राज-भाषा बनने पर कश्मीरी को प्रोत्साहन एवं प्रश्रय न मिल सका। कश्मीरी के लब्धप्रतिष्ठित स्थान पर फारसी आसीन हुई और कश्मीरी भाषा का अवसान प्रारम्भ हुआ। कश्मीरी साहित्यकारों ने अपनी मातृभाषा से किनारा करके विदेशी भाषा फारसी में ही काव्य-रचना करने में अपना गौरव समझा और कश्मीरी को गंवारू भाषा की दृष्टि से देखा जाने लगा। इस काल की कश्मीरी रचनाएं अधिकतर अशिक्षित एवं अर्द्धशिक्षित वर्ग के अपरिपक्व उद्गार मात्र हैं और किसी भी साहित्यिक समृद्धि को प्राप्त न हो सकीं। उत्कृष्ट रचनाएं जितनी भी लिखी गईं उन्हें कोई प्रोत्साहन न मिला और यही कारण है कि इस काल की अधिकांश रचनाएं अप्राप्य हैं। इस काल का कश्मीरी काव्य अधिकतर फारसी प्रेमाख्यान काव्य से प्रभावित है। यह सम्भव है कि इस काल में फारसी भाषा में रामकाव्य की रचनाएं हुई हों, किन्तु अब तक ऐसा कोई भी ग्रन्थ प्राप्त न हो सका है।

काश्मीर में प्रारम्भ से ही शैव-सम्प्रदाय का अधिक प्रचार-प्रसार रहा है। आचार्य सोमानन्द (९वीं शती) की परम्परा में उनके शैव-सिद्ध महापुरुषों ने यहीं जन्म लिया। परिणामस्वरूप विविध शिव के स्तोत्रों एवं शैव-काव्यों की रचना हुई। ललेश्वरी और नुन्द ऋषि के 'वाखों' और 'श्लोकों' तथा परवर्ती कश्मीरी आध्यात्मिक काव्य पर इसी का अधिक प्रभाव पड़ा है। कश्मीरी संस्कृत आचार्यों में क्षेमेन्द्र वैष्णव

थे। उन्होंने 'दशावतार चरित' 'भारत मंजरी' और 'रामायण मंजरी' आदि विष्णु-चरितों का प्रणयन तो किया, किन्तु इनमें अत्यल्प मौलिकता या किसी भी प्रकार की नवीन उद्भावना का समावेश न हो पाया। उक्त रचनाओं को पूर्व-प्रचलित वैष्णव-काव्य का संक्षेप ही कहा जा सकता है। क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण सृजनात्मक या भक्तिमूलक कम आलोचनात्मक अधिक रहा है। इसलिये उनका वैष्णव-काव्य आगे न बढ़ सका और न कश्मीरी शैवों को ही अधिक प्रभावित कर सका। 'बड़शाह' के प्रयत्न से उत्तरी भारत से अनेकों ब्राह्मण कश्मीर में आ बसे और वैष्णव-धर्म का यहीं से कश्मीर में प्रचार हुआ प्रतीत होता है। 'बड़शाह' के बाद कश्मीर में दो ही भाषाओं का प्राधान्य रहा—संस्कृत और फारसी। वैष्णव-धर्म प्रचार के उत्तरोत्तर बढ़ जाने पर हिन्दुओं में संस्कृत रामाख्यानों के अध्ययन-पठन का भी मोह बढ़ गया। फारसी के प्रचुर प्रेमाख्यान परम्परा से प्रभावित होकर कश्मीरी हिन्दु कवि राम-काव्य की अपेक्षा ललित कृष्ण-काव्य की ओर अधिक उन्मुक्त हुए और कई फुटकर काव्यों के अतिरिक्त साहिब कौल ने १७ वीं शती में सर्वप्रथम कश्मीरी में 'कृष्णावतार चरित' की रचना की। सम-सामयिक प्रेम काव्य-परम्परा का यथेष्ठ प्रभाव उक्त कृष्ण-चरित पर भी पड़ा है। १८ वीं शताब्दी तक आते आते भारतवर्ष में वैष्णव रामभक्ति-सम्प्रदाय ने पूरा जोर पकड़ लिया था और कश्मीरी रामभक्त कवियों का भी रामाख्यान काव्य-रचना की ओर झुकाव स्वाभाविक था। कश्मीर में अफगानों के पश्चात सिख और डोगरा शासकों ने कश्मीरी भाषा को पुन: प्रोत्साहन दिया और रामभक्ति-धारा के उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ १८ वीं शती से ही अनवरत रामकथा से सम्बन्धित कश्मीरी काव्यों का प्रणयन हुआ।

१—प्रकाश रामायण

कश्मीर में प्रकाशराम कृत 'प्रकाश रामायण' से पूर्ववर्ती किसी भी रामकथा-काव्य का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु इसमें विषयगत व्यापकता एवं विस्तार के साथ साथ क्षेत्रीय लौकिक तत्वों का इतना अधिक समावेश हुआ है कि निस्संकोच इसे लौकिक कथानक-परम्परा का विकसित महाकाव्य रूप कहा जा सकता है। महाकाव्योचित परम्परागत प्रकृति एवं वस्तु-दृश्य-वर्णन में क्षेत्रीय विशेषताओं के प्राधान्य के अतिरिक्त इसमें कश्मीरी वेश-भूषा, भोजन-आहार, रहन-सहन, रीति-रिवाजों, और कश्मीरी के ही प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों, देवालयों, मन्दिरों, और यहां तक कि सीता के पृथ्वी-प्रवेश प्रसंग में 'शंकर पुर' गांव के स्थान का नामोल्लेख मिलता है। कथावस्तु की दृष्टि से 'प्रकाश रामायण' का मुख्याधार 'वाल्मीकि

रामायण' और 'अध्यात्मक रामायण' ही है। 'प्रकाश रामायण' पर विभिन्न पुराणों और संस्कृत राम-काव्यों का भी प्रभाव पड़ा है, फिर भी कथानक में विविध मौलिक प्रसंगों एवं नवीन उद्भावनाओं का समावेश हुआ है जिसका अनुकरण परवर्ती रामायण-काव्य में भी दृष्टिगोचर होता है। सारा कथानक सात खण्डों में विभक्त है और अन्त में लव-कुश चरित्र भी जोड़ दिया गया है। कथा-वर्णन में कवि का दृष्टिकोण भक्तिपरक है और काव्य की रचना उत्कट भक्ति-भावना की प्रेरणा से हुई है। प्रकाश रामायण के प्रणयन द्वारा कश्मीरी काव्य में सर्वप्रथम वैष्णव-रामभक्ति धारा को व्यापक रूप मिला। कवि शैव और वैष्णवों के बीच अन्योन्याश्रय सम्बंध की स्थापना के उद्देश्य में भी पूर्णतया सफल हुए हैं। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से आद्यंत रामायण में अविच्छिन्न प्रबन्धात्मकता के दर्शन होते हैं। प्रासंगिक घटनाओं और मुख्य कथा के पारस्परिक सम्बंध में कहीं भी शिथिलता नहीं मिलती है। महाकाव्योचितचरित्र-चित्रण, रस-निरूपण, परम्परागत वर्णनों और भाषा-शैली की उदात्तता में 'प्रकाश रामायण' परवर्ती-राम काव्यों से आगे है।

'प्रकाश रामायण' पर फ़ारसी मसनवियों की रज़मिया शैली का प्रभाव पड़ा है। उक्त रज़मिया शैली में ही कश्मीर में सभी पूर्ववर्ती फारसी प्रेम काव्यों एवं चरित काव्यों की रचना हुई थी। कवि फ़ारसी के भी विद्वान थे अतः उनकी महत्वपूर्ण काव्य-कृति पर इस शैली का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। पं० प्रकाशराम ने दो ही मुख्य काव्य-शैलियों का प्रयोग किया है—इतिवृत्तात्मक और गीति शैली। इतिवृत्तात्मक में कथा-निर्वाह अधिक प्रबन्धात्मक, संतुलित और सन्तुष्ट है। गीति-शैली का प्रयोग अधिकतर वन्दना-स्तुतियों के वर्णन में हुआ है। भाषा का प्रवाह आद्यन्त सरल और सरस है जिसमें अलंकारों मुहावरों और लोकोक्तियों का समुचित प्रयोग हुआ है। कवि पौराणिक उपदेशात्मक शैली से भी प्रभावित हुए हैं। रामायण के विभिन्न प्रसंगों में दार्शनिक-आध्यात्मिक विचारों एवं नैतिक कथनों का सूत्रपात यत्र-तत्र इसी शैली में किया गया है। उन्होंने सारी रामकथा को एक ही पात्रात्मक रूपक पाश में बांधा है। सारी कथा शिव-पार्वती संवाद में वर्णित है। संक्षेप में कश्मीरी राम कथा-काव्य में दोनों वस्तु-संगठन और काव्य-शैली की दृष्टि से 'प्रकाश रामायण' का महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परागत कथानक में कवि की मौलिक और नवीन उद्भावनाओं, कुशल चरित्र-निरूपण भाव-गम्भीर और रस नियोजना, काव्य शैली की उदात्तता और क्षेत्रीय वर्णन-कौशल के अद्भुत समन्वय की दृष्टि से रामकथा काव्य में ही नहीं अपितु अन्य कश्मीरी प्रबन्ध काव्यों में भी 'प्रकाश-रामायण' को विशिष्ठ स्थान प्राप्त है।

२—शंकर रामायण

'शंकर रामायण' की रचना डोगरा राजा रणबीर सिंह के शासनकाल अर्थात १८७० ई० में हुई है*। प्रस्तुत रामायण में राम जन्म से लेकर राम के वैकुण्ठ-धाम की सारी कथा वर्णित है। 'शंकर रामायण' का कथा-क्रम मुख्यतया पांच खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड के अन्तर्गत अध्यायों को रखा गया है और अंतिम तीन खण्डों के लिए क्रमशः युद्ध-काण्ड, उत्तर-काण्ड और लव-कुश काण्ड, का नामोल्लेख मिलता है। खण्डों का रूप-आकार और कथा-क्रम इस प्रकार है :

खण्ड	कुल अध्याय	पद संख्या	वर्ण्य-विषय
प्रथम	१६	१२७८	प्रारम्भ से लेकर सीता-हरण तक ।
द्वितीय	११	१२५२	सीता-खोज से लेकर युद्ध की तैयारी ।
तृतीय (युद्ध काण्ड)	११	१२८०	लंका-युद्ध वर्णन और राम की विजय।
चतुर्थ (उत्तर काण्ड)	५	२७८	विजयोपरांत अयोध्या आगमन ।
पंचम(लव-कुश काण्ड)	१	३२२	सीता त्याग, लव-कुश जन्म, युद्ध और बैकुण्ठ धाम का वर्णन ।

इस तरह पांच खण्डों में विभाजित रामायण में ४४ अध्याय और कुल पद-संख्या ४४१० की है। सम्पूर्ण रामायण की रचना इतिवृत्तात्मक वर्णन शैली में न होकर गीति शैली में हुई है। जिसमें प्रत्येक अध्याय की रचना अलग अलग टेकों के अन्तर्गत हुई है।

कथावस्तु का मुख्याधार 'वाल्मीकि रामायण' ही है, किन्तु कवि 'अध्यात्म रामायण' से भी प्रभावित रहे हैं। 'अध्यात्म रामायण' की भांति कवि ने उत्कट भक्ति-भावना के कारण परम्परागत कथानक में कई परिवर्तन किए हैं। इतना ही नहीं शबरी प्रसंग वर्णन में कवि ने स्पष्टता 'अध्यात्म रामायण' का नामोल्लेख भी किया है†। रामायण के प्रारम्भ से महाकाव्योचित मंगलचरण स्वरूप श्री गणेश, सरस्वती, गुरु, ब्रह्मा, शिव तथा पार्वती की वन्दना-स्तुति के अतिरिक्त राम-भक्ति और नाम महात्म्य

---

*—श्रीनगर रिसर्च लाइब्रेरी में उपलब्ध 'शंकर रामायण' की देवनागरी लिपि की हस्तलिखित प्रति के अन्त पर रचनाकाल के बारे में राजा रणवीर सिंह के शासन काल और सप्त ऋषि संवत् ४९४५ का उल्लेख किया गया है। जो सन् १८७० ई० या सं० १९२७ बि० के बराबर है।

†—शूद्र कूर सै आ़स बोज बड़ि भावै, अध्यात्मस मंज़ छुय लीखित ।
—शंकर रा०, खण्ड १, अध्याय १२ (१०४)।

का विपुल बखान किया गया है। अन्य संवादों का उल्लेख करते हुए सारी कथा मुख्य रूप से शिव-पार्वती संवाद में ही वर्णित है।

गीति-शैली में वर्णित काव्य का कथा-निर्वाह अपेक्षाकृत दुरुह होता है और उसमें प्रबन्धात्मकता छिन्न-भिन्न होती है, किन्तु आलोच्य रामायण में कथात्मक असंगतियां अत्यल्प दिखाई पड़ती हैं। कवि ने इस नयी शैली के माध्यम से प्रायः एक-एक कथा से सम्बन्धित प्रमुख भावना या पात्र-विशेष को लेकर एक ही टेक में पूरे अध्याय की रचना की है। जिसमें प्रासंगिक सम्बद्धता का सर्वत्र ध्यान रखा गया है। फिर भी समग्र रूप से काव्य में प्रबन्धात्मकता की शिथिलता से इन्कार नहीं किया जा सकता। विशिष्ट अध्याय की टेक को दृष्टि में रखकर कवि को विवशत: कई स्थलों पर कथा-सूत्रों एवं प्रसंगों में क्रम-परिवर्तन करना पड़ा है। प्रमुख पात्रों के चरित्र-निरूपण मे कवि का प्रयत्न स्तुत्य है। उन्होंने किसी भी पात्र के चरित्र को न उलझा कर रखा है और न दबा कर ही। पात्रों का चरित्रांकन कथात्मक सीमाओं में हुआ है, जिसमें कवि के स्वतन्त्रोक्त कथन अत्यल्प सम्मिलित हैं।

'शंकर रामायण' की भाषा में क्लिष्टता या दुरुहता नाम मात्र भी नहीं है। अधिकतर बोल-चाल के साधारण और बोधगम्य शब्दों का प्रयोग किया गया है। गीतों में गेयता प्रधान है और कवि ने गेयता की दृष्टि से कश्मीरी गीति-शैली के विविध रूपों को अपनाकर प्रत्येक अध्याय में छन्द परिवर्तन करने का प्रयास किया है। 'रफ़' शैली में वर्णित गीत स्त्रियां शिशिष्ट लोक-नाच में गाती हैं। उक्त शैली का प्रयोग कवि न इस अध्याय में किया है :—

> यलि त्रोव शरीर दशरथ राजन तै,
> वनतै राम जू बोज़ि न सोन.. ...। (खण्ड १, अ० १)

इस सरलतम 'रफ़' की लोक-शैली में दशरथ-मरण, भरत-आगमन एवं अयोध्या वासियों की शोकाकुलता जैसे गम्भीर और मार्मिक प्रसंगों को वर्णित करके कवि ने अद्भुत कला-कौशल का परिचय दिया है। संक्षेप में वस्तु-विन्यास, चरित्र-निरुपण और भाषा-शैली की दृष्टि से कश्मीरी रामकथा-काव्य में प्रस्तुत रचना को एक शिशिष्ट स्थान प्राप्त है।

३—आनन्द-रामावतारचरित

पं० आनन्दराम राज़दान ने १८८० ई० के लगभग रामावतार चरित की रचना

की है‡। परम्परागत कथानक पर आधारित होकर भी प्रस्तुत कृति में कई नई और मौलिक उद्भावनाएं मिलती हैं। कवि ने प्रारम्भ में स्वयं वेदों को कथानक का मुख्याधार बताकर कहा है कि वे वेदों में वर्णित रामकथा का ही सविस्तार वर्णन कर रहे हैं :—

छि वानी वीद वखनन रामावतार,
यिथ पअठ्यन दिवन छुस ज्यूठ व्यस्तार। (आ० रा० पृ० १०)

"वेदों" से कवि का तात्पर्य परम्परागत लोक-विश्रुत कथानक से ही है। कथानक का प्रारम्भ उन्होंने महागणेश, सतगुरु, श्रीराम और सदाशिव की मंगलाचरण स्वरूप वन्दन-स्तुति के पश्चात् किया है। यहीं पर राम के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों की वन्दन-स्तुति करते हुए राम-नाम महात्म्य और क्षीरसागर में शेषनाग पर विराजमान भगवान विष्णु के चतुर्भुज रूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। कथानक के प्रसंगों एवं अन्य घटनाओं के वर्णन में कवि ने स्वतन्त्रता से काम लिया है। कथा-क्रम परम्परागत होने पर भी 'काण्डों' का निर्देश कहीं नहीं मिलता है, बल्कि प्रत्येक नये प्रसंग के प्रारम्भ में वर्ण्य-विषय सम्बन्धित मोटे शब्दों में संकेत प्राप्य हैं। आलोच्य 'रामावतार चरित' में राम-जन्म से लेकर सीता के पृथ्वी में समा जाने तक पूरा वृत्तांत मिलता है जिसमें विविध-पौराणिक कथाओं का भी सन्निवेश दृष्टिगत होता है। 'आनन्द रामावतार चरित' में वर्णित सभी युद्ध-दृश्य अद्भुत एवं सुन्दर हैं। कवि ने सीता द्वारा महाकाली रूप धारण कर महारावण के संहार करने का सविस्तार वर्णन किया है, जिसमें कवि पर शावत प्रभाव स्पष्ट होता है। लंका के युद्धों का वर्णन नौ दिनों के क्रम में मिलता है।

पं० आनन्द राम ने भी दो ही मुख्य अभिव्यक्ति शैलियों को अपनाया है—इतिवृत्तात्मक और गीति शैली। प्रायः कथा-वर्णन में इतिवृत्तात्मक और वन्दना-स्तुतियों में गीति-शैली का प्रयोग किया गया है। गीति-शैली के अन्तर्गत उन्होंने विविध लोक-

---

‡—'रामावतार चरित' के रचना काल से सम्बन्धित कवि की यह उक्ति प्रसिद्ध है :—

"चेयम यलि चानि लोलच खीर थअजी।
वनिम भक्ती सन ओस पांचताजी।"

इसका अभिप्राय सं० १९४५ वि० से है। उक्त रचना की एक ही सम्पूर्ण हस्तलिखित प्रति पं० दीनानाथ राजदान के घर 'त्रिसल' (पुलावामा-कश्मीर) गांव में सुरक्षित है। जिसमें रचनाकाल का निर्देश नहीं मिलता है।

शैली में वर्णित एक सुन्दर भक्तिपरक गीत में राजा दशरथ द्वारा अन्धमुनि बालक की मृत्यु का गम्भीर प्रसंग वर्णित किया है :—

दम दम छम थर थर लो लो,
रामचन्द्र श्री भास्कर लो लो।......(आ० रा० पृ० ६७)

'आनन्द रामावतार चरित' की भाषा में फारसी के सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है और एकाध स्थान पर फारसी की स्वतन्त्र पंक्तियां भी मिलती हैं। अपनी रचना के अन्त पर कवि ने फारसी भाषा में ही स्वतन्त्र रूप से राम के प्रति वन्दना-स्तुति की है जिनकी अनन्य कृपा से ही वे उनके चरित का वर्णन करने में सफल हुए हैं।

४—विष्णु प्रताप-रामायण

पं० विष्णु कौल ने 'विष्णु प्रताप रामायण'* की रचना १९१३ ई० में की है। कवि ने रामायण के अन्त पर रचना-काल का स्पष्ट निर्देश किया है।† कश्मीर के तत्कालीन धर्म-प्रिय डोगरा शासक महाराजा प्रताप सिंह कवियों, विद्वानों एवं ज्योतिष-पण्डितों के आदर एवं सम्मान के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। पं० विष्णु कौल पर उनका विशेष स्नेह था और इसीलिये उन्होंने अपनी प्रौढ़तम रचना कश्मीरी रामायण उन्हें सश्रद्धा समर्पित करके इसका नाम 'विष्णु प्रताप रामायण' रखा है—'विष्णु' उनका अपना नाम और 'प्रताप' राजा प्रताप सिंह का। अब्दुल अहाद 'आज़ाद' ने प्रस्तुत रामायण को 'वाल्मीकि रामायण' का अनुवाद कहा है,‡ जो बिल्कुल गलत है। 'विष्णु प्रताप रामायण' बाल्मीकि रामायण' या किसी भी पूर्व-प्रचलित रामायण का अनुवाद नहीं है जो कथा-विवेचन एवं अन्य विशेषताओं से स्वतः स्पष्ट होता है। आलोच्य रामायण का वृहत रूप देखकर ही श्री 'आजाद' ने ऐसी धारणा बनाई है!

'विष्णु प्रताप रामायण' लगभग तीन सहस्र चरणों में वर्णित महाकाव्य है। कुल अध्यायों की संख्या ३४७ है। ये अध्याय मुख्य रूप से पांच खण्डों में इस प्रकार क्रमबद्ध हैं—बालकाण्ड (३० अध्याय), वनवास काण्ड (१९२ अ०) अश्वमेध काण्ड (७० अ०) राज लीला काण्ड (२५ अ०) और बैकुण्ठ लीला काण्ड (३१ अ०)।

---

* 'विष्णु प्रताप रामायण' की हस्तलिखित प्रति दो भागों में पं० विष्णु कौल के पुत्र पं० ओंकार नाथ कौल के घर (श्रीनगर) पर सुरक्षित है।

†—देखिए—'विष्णु प्रताप रामायण' हस्तलिखित प्रति। पृ० ९४१।

'विष्णु प्रताप रामायण' लगभग तीस सहस्र चरणों में वर्णित महाकाव्य है।

‡—देखिए—कश्मीरी 'जबान और शायरी', दूसरा भाग, पृ० ४११।

इन में से 'वनवास काण्ड' के अन्तर्गत रामकथा के अयोध्या काण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक की सभी घटनाएं वर्णित हैं। कवि ने 'वनवास काण्ड' के एक ही अध्याय-क्रम में ३५ अध्याय से किष्किंधा काण्ड' और ४५ अध्याय से 'लंका काण्ड' के प्रारम्भ का उल्लेख किया है। इन दो नामों को जोड़ने से कुल काण्डों की संख्या ७ होती है। प्रति में इन दो काण्डों के नाम को बाद में जोड़ा गया प्रतीत होता है क्योंकि अध्याय-क्रम एक ही है।

आलोच्य रामायण के कथा-क्रम का मुख्यआधार 'वाल्मीकि रामायण' ही है, जिसमें विभिन्न मौलिक प्रसं ों का चित्रण किया गया है। 'रामायण' के प्रारम्भ में कवि ने मंगलाचरण स्वरूप महागणेश और सतगुरु की वन्दना के अतिरिक्त राम-नाम और कथा-महात्म्य का विस्तृत वर्णन किया है। यहीं पर आदर्श मानव-धर्म व्यावहारिक कर्मों और नैतिक विचारों का स्पष्टीकरण भी किया गया है। महाकाव्योचित परम्परागत वस्तु एवं दृश्य-वर्णनों का अनुकरण करके कवि ने इन्हें अधिकाधिक क्षेत्रीय बनाने का प्रयत्न किया है। सर्वत्र वर्णनान्तर्गत क्षेत्रीय प्राकृतिक नामरूपों और स्थानों को दृष्टि में रखा गया है। राजलीला काण्ड इन्हीं क्षेत्रीय वर्णन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कवि ने राम की कश्मीर यात्रा का विस्तृत वर्णन किया, जिसमें विभिन्न धार्मिक एवं नैतिक विचारों की विस्तृत विवेचना हुई है। पं. विष्णुकौल ने युद्धों का सजीव वर्णन किया है जिन में नवीन अस्त्र-शस्त्रों के भी कुछ नाम परिगणित किए गए हैं। आनंद रामावतार-चरित की भांति सीता का महाकाली रूप धारण कर महारावण-वध करने का प्रसंग भी इसमें सविस्तार वर्णित है।

पूर्ववर्ती रचनाओं की भांति प्रस्तुत रामायण में भी इतिवृतात्मक और गीति शैली का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है। इतिवृतात्मक शैली के अन्तर्गत संवादों की योजना पर 'प्रकाश रामायण' का प्रभाव पड़ा है और कई प्रसंगों में वर्णन-शैली का पूर्णत: अनुकरण किया गया है। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ फारसी के शब्दों का प्राचुर्य मिलता है। विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में स्वतंत्र रूप से उर्दू-हिन्दी-मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग भी किया गया है।

कथा-निर्वाह के साथ-साथ चरित्र-निरूपण और रस-नियोजना में भी कवि को सफलता मिली है। समग्ररूप से देखने पर वस्तु संगठन, चरित्र-निरूपण, रस-योजना और भाषा-शैली की दृष्टि से कश्मीरी रामकथा-काव्य में प्रस्तुत रचना का महत्वपूर्ण स्थान है। 'प्रकाश रामायण' के पश्चात् 'विष्णु प्रताप रामायण' में ही वस्तु-विन्यास एवं काव्य-शैली में क्षेत्रीय साहित्यिक, समाजिक और प्राकृतिक विशेताओं का अधिक

समावेश हुआ है। जन-जीवन एवं सामाज का जितना सजीव और जीवंत चित्रण दोनों कृतियों द्वारा सम्भव हो सका है, अन्य काव्यों के माध्यम से नहीं।

५—शर्मा रामायण

पं० नील कण्ठ शर्मा ने 'शर्मा रामायण'* को रचना १९१९ ई० से लेकर १ २६ ई० में की है। कवि ने रचना के प्रारम्भ और अन्त पर उक्त रचना-काल का उल्लेख किया है।† फारसी-काव्य-शैली से प्रभावित होकर कवि ने अपनी रचना का नाम 'रामायणि-शर्मा' रखा है। रामायण की रचना आठ काण्डों—बाल०, अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा०, सुन्दर० लंका०, उतर० और लव-कुश काण्डों में हुई है। महाकाव्यों चित मंगलाचरणस्वरूप प्रारम्भ में महागणेश, गुरु, निर्गुण ब्रह्म, सगुण-विष्णु, शिव और राम-सीता के अतिरिक्त रामभक्त एवं कथाकार वाल्मीकि, भगवान व्यास तथा तुलसीदास की भी वन्दना की गई है। रामायण के प्रस्तावना भाग में कवि ने अपने पिता के ज्ञानोपदेश, सत्यप्रेरणा, राम-भक्ति माहात्मय और समकालीन राजा प्रताप सिंह के धर्मशासन का भी वर्णन किया है। उसके अतिरिक्त प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में भी महागणेश की वन्दना-अर्चना मंगलाचरण स्वरूप की गई है।

पूर्ववर्ती कश्मीरी रामकथा-काव्यों की भांति रामभक्ति ही प्रस्तुत रामायण की महत्प्रेरणा है, जिसका प्रतिवादन-प्रसार ही काव्य-कृति-का मुख्य उद्देश्य है। कवि परम्परागत कथा-क्रम का अनुकरण करते हुए भी 'अध्यातम रामायण' और 'रामचरित-मानस' से अधिक प्रभावित है। तुलसी-मानस की उत्कट भक्ति-भावना एवं सद्प्रेरणा का उल्लेख उन्होंने प्रारम्भ में ही किया है। कथा के संवादों का उल्लेख करते हुए उन्होंने यहां तक कहा है कि वे तुलसी-मानस में वर्णित रामकथा के आधार पर ही रामकथा का वर्णन कर रहे हैं।‡ तुलसीदास के 'मानस' को मुख्याधार स्वीकार करते हुए भी आलोच्य रामायण में कई मौलिक प्रसंग एवं कथात्मक उद्भावनाएं वर्णित हैं, जिससे यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि कवि ने आंख मूंदकर मानस के ही घटना प्रसंगों का अपरि-वर्तित रूप में वर्णन किया है। 'मानस' अनुकरणीय मुख्य प्रसंग प्रतापभानु-चरित और

---

*—'शर्मा रामायण की-अप्रकादित हस्तलिखित प्रति कवि के निवास-स्थान श्रीनगर पर सुरक्षित है।

† -देखिए—शर्मा-रामायण, हस्तलिखित प्रति, पृ० ६ तथा ५३८।

‡—"अगर शोख छुय बोज रामकथा। छु तुलसीकृतस मंज़ वसुन्मुत यथा।
(शर्मा रा० प्र० ७)

कागभुशुंडी-गरुड़ चरित हैं। इसके अतिरिक्त जनक-वाटिका में राम-सीता का पूर्वानुराग प्रसंग, अनुसूया-सीता संवाद, शरभंग और सुतीक्ष्ण से भेंट, वर्षा वर्णन, रावण-पराभव एवं अंगद-रावण संवाद आदि-प्रसंगों पर भी 'मानस' का ही प्रभाव देखा जा सकता है। ग्रन्थ-प्रणयन से पूर्व कवि ने मानस का अध्ययन-मनन विस्तार से किया है, जिससे उक्तप्रसंगों के चित्रण में प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। एकात्र स्थल पर 'शर्मा रामायण' की पंक्तियां 'मानस' के चरणों का अनुवाद सी प्रतीत होती हैं। जैसे—

'मानस' :
घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।।
दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिरु नाहीं।।
(मानस ४—१४)

शर्मा रामायण :
छि वड़ि शब्द क्या गगरायनइ गछान।
छु सीताथि रूस म्योन दिल गाबरान।।
छि तुजमल प्रजलान कअच मेघस अन्दर।
यिथै कन्य कुटिल सुन्द प्रेम छुनह थेर।। (पृष्ठ २२२)

फिर भी 'शर्मा रामायण' में कथावस्तु एवं काव्य-शैली से सम्बंधित मौलिक उद्भावनाएं इतनी अधिक हैं कि इसे 'मानस' का अनुवाद मानने के भ्रम में पड़ना असम्भव है। विभिन्न प्रसंगों की प्रबन्धात्मकता एवं मुख्यकथा से सम्बंद्धता आलोच्य रामायण की प्रधान विशेषता है, कहीं भी वस्तुगत शिथिलता प्रतीत नहीं होती है। चरित्र-चित्रण पूर्ण और समृद्ध है, पात्रों के चरित्र में आदर्श और-यथार्थ चारित्रिक गुण-अवगुणों का सकुशल सामंजस्य मिलता है। विविध रसों की नियोजना सुन्दर है। जिनमें प्रधान भक्ति रस है।

पं० नीलकंठ शर्मा ने परम्परागत दोनों इतिवृत्तात्मक और गीति शैली का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर उन्होंने अपने भाषाधिकार का परिचय चमत्कारपूर्ण अलंकार योजना और शब्द-चयन द्वारा दे दिया है। कवि ने सीता के प्रलाप में कश्मीरी की चमत्कार पूर्ण वर्णन-शैली 'वे नुक्ता अलफ़ाज़ों' (बिन्दी-विहीन शब्द-चयन) का भी प्रयोग किया है। शब्द-भण्डार में पूर्ववर्ती रचनाओं की भाँति फारसी शब्दों, वाक्यों एवं पूरे चरणों का प्राधान्य है। 'विष्णु प्रताप रामायण' की तरह 'शर्मा रामायण' में भी विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में उर्दू-हिन्दी मिश्रित खड़ी-बोली का स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया है। प्रकृति-चित्रण एवं युद्ध प्रसंगों के चित्रण में अधिकाधिक क्षेत्रीय काव्यात्मक विशेषताओं का प्रभाव देखा जा सकता है। अतः वस्तु–योजना, चरित्र-

निरूपण, क्षेत्रीय वैशिष्ट्य और भाषा-शैली की उदात्तता के कारण 'शर्मा रामायण' का भी कश्मीरी-रामकथा-काव्य में विशिष्ट योगदान है।

६--*ताराचन्द रामायण*

पं० ताराचन्द ने 'ताराचन्द रामायण'*की रचना १९२६ ई० में की है। प्रस्तुत रामायण की रचना आठ काण्डों में हुई है। प्रत्येक काण्ड में वि० प्र० रा० की भांति विभिन्न अध्यायों को रखा गया है। काण्डानुसार अध्यायों का क्रम इस प्रकार है—बालकाण्ड (४४ अध्याय), अयोध्या-काण्ड (१७ अ०), अरण्य-काण्ड (६ अ०), किष्किंधा-काण्ड (५ अ०), सुन्दर-काण्ड (६ अ०), लंका-काण्ड (१३ अ०) उत्तर-काण्ड (५ अ०) तथा अश्वमेध-काण्ड (६ अ०) परम्परागत महाकाव्योचित शैली का अनुकरण करते हुए कृति के प्रारम्भ में महागणेश, गुरु, राम, शिव-पार्वती सरस्वती आदि की वन्दना-स्तुति की गई है। अन्य काण्डों के प्रारम्भ में भी मंगलाचरणस्वरूप वन्दनाएं प्राप्य हैं। प्रत्येक काण्ड के अन्त पर राम के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई है, जिनकी असीम कृपा-दृष्टि से कवि उनके महान् चरित्र के वर्णन में समर्थ सिद्ध हुए हैं। इसके साथ ही कवि अपने इष्ट राम के समक्ष अपनी दीनता और ज्ञानहीनता विनम्र शब्दों में व्यक्त करते हैं। काव्य-रचना की महती प्रेरणा भक्ति-भावना ही है। परम्परागत कथानक का अनुसरण करते हुए वे भी अधिकतर 'अध्यात्मरामायण' और 'रामचरितमानस' से प्रभावित रहे हैं। भक्ति और ज्ञानविषयक उदात्त उक्तियों का अनुकरण उन्होंने 'अध्यात्म रामायण' से ही किया प्रतीत होता। कथावस्तु की योजना में 'मानस' और कश्मीरी 'प्रकाश रामायण' से प्रभावित रहे हैं। फिर भी ताराचन्द 'रामायण' में कई मौलिक प्रसंगों का वर्णन मिलता है और 'मानस' से प्रभावित प्रसंगों के चित्रण में कवि की निजी सूझ के अनुसार विविध मौलिक कथा-विषयक उद्भावनाओं का समावेश हुआ है। सकुशल कथा-निर्वाह के साथ-साथ चरित्रनिरूपण भी समुचित ढंग से हुआ है।

'ताराचंद रामायण' में पूर्ववर्ती काव्यों की उपेक्षा फारसी अरबी के क्लिष्ट शब्दों का भी अत्यल्प प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत रामायण में भी अभिव्यक्ति प्रणाली के दोनों मुख्य रूपों—इतिवृत्तात्मक और गीतिशैली का ही प्रयोग किया गया है। महाकाव्योचित वस्तु-विन्यास और भाषाशैली की दृष्टि से कश्मीरी रामकथा-काव्य में इसका भी विशिष्ट स्थान है।

---

*--'ताराचन्द रामायण' की मूल हस्तलिखित प्रति कवि के गांव (वीरकुम-कुकड़नार, कश्मीर) में सुरक्षित है!

७—अमर रामायण

'अमर रामायण'* की रचना पं० अमर नाथ 'अमर' द्वारा १९४० ई० में हुई है। कथानक का मुख्याधार 'बाल्मीकि रामायण' ही है जिसमें कई नवीन प्रसंगों एवं वर्णनों को भी जोड़ा गया है। आद्यन्त पूर्व-प्रचलित कथा क्रम का अनुसरण करते हुए कहीं भी काण्डों का निर्देश नहीं मिलता है। कथा-वर्णन मुख्य विषयगत या प्रसंगात्मक शीर्षकों के अन्तर्गत हुआ है। रामायण के प्रारम्भ में कवि ने मंगलास्वरूप महागणेश और गुरु की वन्दना-अर्चना के पश्चात् वाल्मीकि-चरित्र का भी संक्षेप में उल्लेख किया है। नव युगीन सामाजिक और राजनीतिक विचार-धाराओं से प्रभावित होकर कवि ने उसका सामावेश लोक-विश्रुत परम्परागत कथानक में भी किया है। उदाहरणार्थ अछूतोद्धार की गांधीवादी भावना का वर्णन उन्होंने 'राम शबरी भेंट' प्रसंगों के चित्रण में किया है। इसी तरह विधवा-विवाह की समाज-कल्याणकारी विभावना से प्रभावित होकर कवि ने बालि के मरणोपरांत सुग्रीव और तारा के विवाह तथा रावण-मृत्यु के पश्चात् मन्दोदरी और विभीषण के विवाह का वर्णन किया है। कवि ने अलौकिक घटनाओं की बुद्धिसंगत व्याख्या प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है। हनुमान् को प्राप्त दो वरों और लक्ष्मण के प्रति सीता के शाप का वर्णन मौलिक है। अनेक प्रसंगों के चित्रण में कवि 'प्रकाश रामायण' से भी प्रभावित हुए हैं। 'प्रकाश रामायण' के आधार पर ही उन्होंने सीता के पृथ्वी-प्रवेश प्रसंग में शंकरपुर स्थान का उल्लेख किया है। रामायण के अन्त पर राम-नाम महात्मय का गुण गान विस्तारपूर्वक वर्णित है।

परम्परागत कथानक में नवीन प्रसंगों की उद्‌भावना होने पर भी समग्र रूप से देखने पर काव्य की प्रबंधात्मकता शिथिल है। मुख्य कथा और प्रासंगिक घटनाओं के बीच उपेक्षित अन्विति का अभाव है। चरित्र-चित्रण उचित ढंग से नहीं हो पाया है। रस-निरूपण भी दोषपूर्ण है। भाषा शैली में साहित्यिक उत्कर्ष का अभाव है। विविध स्थलों पर गीति-लय विच्छिन्न सी होती है। वास्तव में परम्परागत कथानक में नवीन उद्‌भावनाओं का समावेश करना ही कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है और इस प्रयास में कवि को सफलता तो अवश्य मिली है। वस्तु-विन्यास से सम्बंधित इन मौलिक उद्‌भावनाओं के कारण ही कश्मीरी रामकथा-काव्य में प्रस्तुत रामायण को विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

उपर्युक्त रामकथा-काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त कश्मीरी भाषा में रामकथा से संबंधित विविध प्रसंगों एवं फुटकर घटनाओं पर बहुसंख्यक गीतों की रचना हुई है, किन्तु वहां रामभक्ति- निवेदन या लीला-कथन का ही उद्‌देश्य मुखर है, रामकथा-

---

*—'अमर रामायण' की अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति स्वर्गीय कवि के घर (अनंतनाग-कश्मीर) पर सुरक्षित है।

वर्णन का नहीं। इन फुटकर काव्यों के साथ-साथ प्रश्नोत्तर शैली में 'राम-गीताओं' की कई रचनाएं हुई हैं, जिनमें राम लक्ष्मण जी को विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर ज्ञानोपदेश देते हैं। इन में से प्रसिद्ध रचना पं० लक्ष्मण जू 'बुल्बुल' नागाम (जीवन काल १८१६ ई०—१८८८ ई०) की है। उक्त रचना में कर्म, ज्ञान, भक्ति और जीव, जगत, ब्रह्म, माया आदि दार्शनिक तत्वों का सविस्तार मिलता है। इस में राजा नृग और ब्राह्मण के शाप की पौराणिक कथा भी वर्णित है, किन्तु कथा-वर्णन गौण होकर मुख्य प्रतिपाद्य विषय कवि द्वारा निजी बुद्धि के अनुसार कर्म, ज्ञान, भक्ति, दर्शन आदि की विवेचना ही है। रामकथा की फुटकर घटनाओं के आधार पर छोटे छोटे नाटकों की भी रचनाएं हुई हैं, किन्तु कथा-विकास की दृष्टि से उनका विशेष महत्व नहीं है।

* * *

रामचंद्र शम्बूक का वध करने के पश्चात् पद पद पर सीता की स्मृतियों से मुखरित गोदावरी-प्रदेश का भ्रमण कर रहे हैं वहाँ उन्हें सीता की प्रिय सखी वासन्ती मिल जाती है। देखते ही राम के प्रति उसका हृदय-गत तीव्र आक्रोश फूट पड़ता है—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण॥

—बेचारी सीता जब तुम्हारे पास थी, उस समय तो हजार चाटुकारिता की बातें उससे किया करते थे—"तुम मेरा जीवन हो, तुम मेरा द्वितीय हृदय हो, तुम आंखों की कौमुदी हो, तुम्हारा स्पर्श मेरे अंगों के लिए अमृत है और नजाने क्या-क्या?" और, उस सरल हृदया को अपनी चाटुकारिता से लुभाकर अंत में...खैर छोड़ो-तुम्हारे जैसे मनुष्य को और आगे कहने से ही क्या फायदा?

—भवभूतिकृत उत्तररामचरित, तृतीय अंक से

रत्नलाल शांत

समर्पण

उन्हें,
प्राण छूट गये जिन से
लेकिन जो मुट्ठियां
विवश तूफान लिए कसी ही रहीं
उन बाहों को
जिनकी उड़ने की आकांक्षा ही पर
वज्र गिरे और वे टूट गयीं
उन कदमों को जो किसी अनाम भार से टूट रहे हों
उन आवाजों को
चीखें बनकर जीते रहना ही जिनकी नियति है ।

आग हमेशा धधके ही यह नहीं ज़रूरी
कहीं राख में चिनगारी सुलगा ही करती है
लेकिन नभ को छूने जिसने ऊपर हाथ उठाए
उसे अपाहिज कहकर दुनिया बैसाखी देती है
नई दृष्टि पाने जिसने भी अपनी खिड़की खोली
पक्की एक अंधी दीवार उसे सामने मिल गई
द्वार सलाखों के और दीवारें तपते लोहे की
कीलें उसके अंग अंग पर और होठों पर मुहरें
उसके हर घाव हर जख्म की एक दवा दी जाती है—
प्रवचन, भाषण, वादे, शोर, निरर्थक आवाज़ें ।

उसके अरमान सीलते हैं
और दुनिया को इंतज़ार रहता है उसकी मौत का
कि उसे मसीहा घोषित करदे ।
लेकिन जो टूटता रहा
मसीहा नहीं बना
मेरा गीत उसे समर्पित है ।

डेनमार्क के लोक साहित्य में कोयल

डा० वेद कुमारी

डेनमार्क में सरदियों के दिन बहुत छोटे होते हैं। शीत का प्रकोप और लम्बी अन्धेरी रातें बिजली के हीटरों, बल्बों और अन्य उपकरणों की सहायता से ही कटती हैं। घर से बाहर निकलने से पूर्व गर्म स्वेटर, कोट, ओवरकोट दस्तानों, जुराबों इत्यादि से लेस होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में वहां के निवासी बड़ी लालसा से बसन्त और ग्रीष्म की प्रतीक्षा करते हैं। सरदी के दिनों में डेनमार्क के जंगल पीले सूखे पत्तों से भरे रहते हैं। ऊंचे ठूंठों से भरे वे जंगल भी मानों उत्सुकता से बसन्त के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। मई मास के प्रारम्भ में जब डेनमार्क के राष्ट्रीय वृक्ष ब्युक पर हरी कोमल कोंपलें आने लगती हैं तो वहां के निवासियों के हृदय प्रसन्नता से झूम उठते हैं। बस दो सप्ताह के भीतर ही भीतर सारी धरती हरियाली से ढंक जाती है। हरी हरी घास के बीच खिले श्वेत और पीले फूल ऐसे प्रतीत होते हैं मानों किसी ने प्रकृति रानी की हरी चुनरी पर सफेद और सुनहरे सितारे टाँक दिए हों। सरदी के दिनों में बर्फ बनी हुई झीलें जलतरंगों से लहराने लगती हैं। इस सुहावने बसन्त के आगमन का सन्देश लाती है कोयल की प्रथम कूक, अत: डेनमार्क के लोक साहित्य में कोयल को महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

कहा जाता है कि कोयल प्रथम मई तक यदि नहीं आ पहुंचती तो वह अपना वचन भंग करने की अपराधिनी होती है। एक अन्य लोकोक्ति में कहा है कि ब्युक पर पहली कोंपल आई तो समझो कोयल की कूक भी सुनाई देगी। दूसरे पक्षियों के आगमन पर बसन्त नहीं आता, उसे तो कोयल का अनुसरण करना होता है:—

"बिप भी आ पहुंचा
स्तोर्क भी आ पहुंचा
कोयल अभी नहीं आई
अत: बसन्त नहीं आया।"

कोयल की कूक और बसन्त का यह अटूट सम्बन्ध जनमानस में इतना घर कर गया है कि नितान्त सुखद संसार की कल्पना में इसके सिवाय किसी अन्य पक्षी की ध्वनि को स्थान नहीं मिला। एक लोकगीत में कहा गया है :—

"मैं तुम्हें उस धरती पर ले चलूंगा
जहां दुःख कभी तुम्हारे पास नहीं फटकेगा,
मैं तुम्हें उस द्वीप में ले चलूंगा
जहां तुम्हें केवल जीवन मिलेगा मृत्यु नहीं,
जहां लाय नामक घास के अतिरिक्त कोई
अन्य घास नहीं होगी,
जहां कोयल के अतिरिक्त कोई अन्य पक्षी
नहीं गाएगा।"

शीत और ग्रीष्म के मध्य सेतु का कार्य करने वाली यह कोयल अनेक लोक-विश्वासों से सम्बन्धित है। 'कोयल ने एक बार कूक दिया तो फिर चाहे कितना ही शीत क्यों न हो, अपने मुख से निकलती श्वास वाष्प में परिवर्तित होती दिखाई नहीं देगी।" "कोयल की कूक के पश्चात् हाथों में दस्ताने पहनना अनुचित है।" ठीक ही तो है। भला जब कोयल बसन्त का सन्देश ले आए तो फिर शीत की धारणा कैसी ?

यदि कोई मनुष्य वर्ष में प्रथम बार कोयल की ध्वनि सुनकर उस वृक्ष को भी ढूंढ ले जहां वह बैठी गा रही हो तो उस मनुष्य द्वारा प्रकट की हुई तीन इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। एक लोककथा में एक ऐसी स्त्री का उल्लेख है जिसके मन में एक शिशु तथा दस गउएं प्राप्त करने की इच्छा थी पर भूल से उसके मुख से बात उलट निकल गई और परिणामस्वरूप उसे दस बच्चों की मां बनना पड़ा पर गाय केवल एक ही मिली।

कोयल की यह मंगलमय ध्वनि कुछ अवस्थाओं में अमंगलसूचक भी मानी जाती है। यदि कोई भूखे पेट कोयल की कूक सुने तो समझो उसके भाग्य में उस वर्ष कोई सुख नहीं बदा, यदि वह किसान है तो पशुओं की मृत्यु तथा खेतों में उपज कम होने की आशंका है। यदि वह किसान-पत्नी है तो उस का माखन या पनीर बिगड़ जाने का डर रहेगा। इस लिए लोककथाओं में यह सुझाव मिलता है कि रात

को सोते समय रोटी का टुकड़ा साथ ले कर सोना चाहिये ताकि उठते ही कोयले की कूक सुनने से पूर्व उसे खाया जा सके। पर यदि भूखे पेट कूक सुनाई पड़ ही जाए तो निकटवर्ती किसी वृक्ष की शाखा को दान्तों से काट कर अपना अमंगल उस वृक्ष को दिया जा सकता है।

सूखी डाली पर कूकती कोयल सूखे मौसम की प्रतीक होती है। यही नहीं :

"यदि कोयल सूखी डाली पर कूकती है
तो अनेक कुमारियों की सगाई टूटती है।"

कोयल की कूक भविष्य की कई अन्य घटनाओं की जानकारी देने वाली भी कही जाती है। जीवन की याद करता हुआ वृद्ध किसान उस से पूछता है :—

"डाली पै बैठी कोयल
मुझे बता, मुझे बता,
कितने वर्ष मुझे और जीना है?"

कोयल कूकना आरम्भ करती है और किसान उन कूकों को गिन कर अपनी आयु के शेष वर्षों का अनुमान लगाता है।

"अरी कोयल, नन्ही कोयल
क्या मुझे बता पाओगी ?
मुझे कितने वर्ष और अविवाहित रहना होगा?"

कोयल अपने बच्चे स्वयं न पाल कर दूसरों से पलवाती है। उस विषय में भी डेनमार्क में एक किवदन्ती प्रचलित है कि एक बार एक कुमारी जंगल में जा कर कोयल से पूछने लगी "बता बता कोयल, मैं कितने वर्ष कुमारी रहूंगी?" कोयल ने कूकना आरम्भ किया तो कूकती ही चली गई। बिचारी कुमारी वर्ष गिनते गिनते थक गई! अखिर क्रुद्ध हो कर उसने कोयल को शाप दिया तू मुझ बिचारी को चिढ़ा रही है कि मैं अपना घर नहीं बसा पाऊंगी तो जा तू भी कभी अपना घर नहीं बसाएगी और अपने बच्चे स्वयं नहीं पालेगी।" उसी शाप का परिणाम है कि कोयल अपना घोंसला नहीं बनाती और अपने बच्चे दूसरों से पलवाती है।

यदि बसन्तारम्भ में पहली बार कोयल की कूक एक बार ही सुनाई पड़े तो आने वाले वर्ष में सखा पड़ता है और यदि वह कूक ऊंची और कई बार हो तो वर्षा अधिक होती है।

विभिन्न दिशाओं में सुनाई पड़ने वाली कोयल ध्वनि के विषय में एक लोकोक्ति है :—

कोयल कूकी पूर्व से, समझो आराम लाई।
कोयल कूकी दक्षिण से, मौत पैगाम लाई ।
कोयल कूकी पश्चिम से, खुशियों के जाम लाई।
कोयल कूकी उत्तर से, भारी कुहराम लाई ।

विज्ञान की उन्नति और शिक्षा के प्रसार के साथ साथ यद्यपि अब डेनमार्क की जनता में यह पुराने विश्वास लगभग समाप्त ही हो गए हैं परन्तु कोयल की कूक के प्रति लोगों का आकर्षण कम नहीं हुआ । मई—जून की प्रकाशमान रात्रियों में युवकों युवतियों की टोलियां इस कूक को सुनने के लिए जंगलों में घूमने निकलती हैं। मशीनों की घर्र घर्र से थके कानों को पक्षिकलरव से मुग्ध करने का यह प्रयास डेनमार्क के लोगों के प्रकृति प्रेम का प्रमाण है।

नियम

- 'शरीज़ा' में प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक दिया जाता है।
- स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक महीने के अन्दर भेज दी जाती है।
- केवल वही अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई जाती हैं, जिनके साथ लेखक का पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा होता है।
- अस्वीकृत रचनाओं के सम्बन्ध में कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया जाता।
- कश्मीरी व डोगरी भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी उच्चस्तरीय लेखों का हम सहर्ष स्वागत करते हैं।
- 'शरीज़ा' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।
- अनुवाद के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना आवश्यक है।

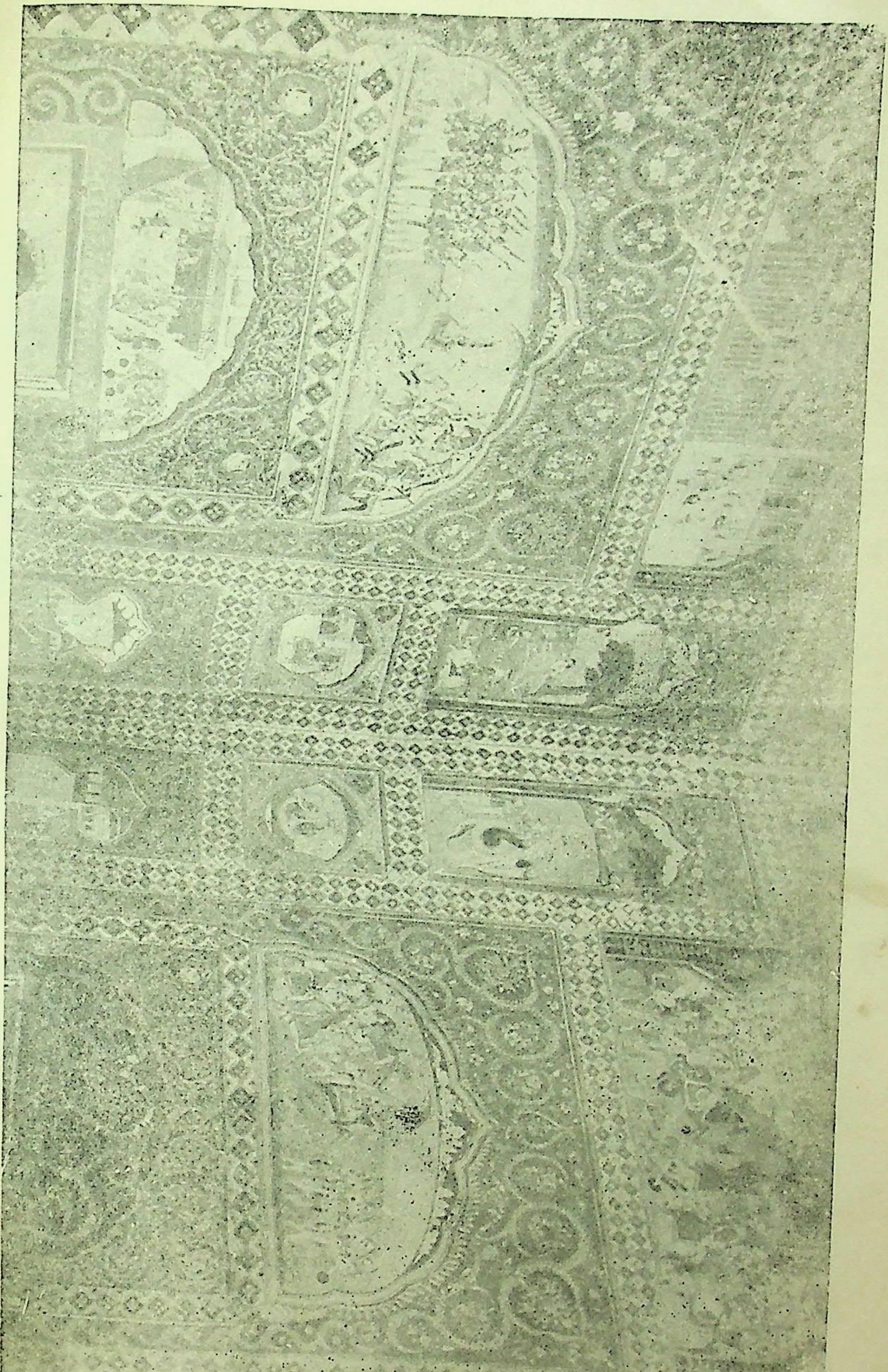
रामनगर-राजमहल के भित्तिचित्र

केदारनाथ शास्त्री ‡‡‡ विद्यारत्न खजूरिया

परिस्थिति

रामनगर का कसबा जिला ऊधमपुर की रामनगर तहसील का केन्द्र स्थान है। यह जम्मू शहर से पूर्वोत्तर दिशा में ६७ मील के लगभग दूर स्थित है। जम्मू और रामनगर के बीच पक्की मोटर सड़क है। जिस पर बसें प्रतिदिन नियत समय पर चलती रहती हैं। इस नगरोटे का 'रामनगर' नाम आधुनिक है और महाराजा रणवीर सिह के दूसरे पुत्र राजा रामसिंह का दिया हुआ है। यह नाम उस समय रखा गया जब जम्मू प्रान्त का यह इलाका उनकी जागीर बनी। इसके पहले इसका नाम बन्दरालता था, क्योंकि यह चन्द्रवंशी बंदराल राजपूतों की राजधानी थी। परम्परागत लोक-कथाओं के आधार पर बन्दराल राजपूत आरम्भ में चम्बा राज्य के रहने वाले थे और चम्बा के चन्द्रवंशी राजाओं की एक शाख थे। अनन्तर ये लोग कुछ परिस्थितियों के कारण इस इलाके (बन्दराल) में आकर बस गये। तब से यह इलाका बन्दरालता कहलाने लगा। इसकी पुष्टि में एक लोक कथा भी प्रचलित है जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है :—

रामनगर से लगभग आठ मील उत्तर में 'कुर्ता' नाम का एक छोटा सा गांव है। सोलहवीं सदी के मध्य में एक स्थानीय राजा इस गांव तथा इसके इर्द-गिर्द के इलाके पर, जिस में रामनगर तहसील की बहुत सी भूमि शामिल थी, शासन करता था। इस राने का वजीर 'घुरु ठक्कर' नाम का एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। आजकल इस ठक्कर के वंश के लोग 'घरान ठक्कर' कहलाते हैं। उस समय के स्थानीय रानाओं में प्रचलित प्रथा यह थी कि वे दशहरे के दिन विजय-दशमी के उत्सव पर दुर्गा को भैंसे की बलि चढ़ाते थे। कुछ लोग जो घुरु ठक्कर से द्वेष रखते थे, उन्होंने एक दिन एकान्त में राना से चुगली की कि "घुरु ठक्कर" जिसे आपने वजीर बनाया है महाकायर है, और



तलवार जिसे वह म्यान में उठाये फिरता है लकड़ी की बनी है । उन्होंने कहा कि अगर कभी लड़ाई का मौका आ पड़ा तो यह ठक्कर आपको धोखा देगा और मैदान से भाग कर आपके शत्रुओं से मिल जाएगा । अगर आपने हमारी बात को सचाई परखनी हो तो इसे कहें कि वह दशहरे के दिन अपनी तलवार से बलि के भैंसे को काटे ।" दशहरे के दिन राना ने घुरु ठक्कर को अपनी तलवार से बलि का भैंसा काटने को कहा । घुरु ने जवाब दिया कि भैंसे को काटना राजपूत का काम नहीं, यह चमार का काम है । राना नहीं माना । आखिर घुरु मान गया और म्यान से अपनी तलवार निकाल खड़ा हो गया । तलवार वस्तुत: काठ की थी जिसे देख सब लोग हंस पड़े । लोगों की हंसी की परवाह न करते हुए घुरु वजीर ने भैंसे के गले पर लकड़ी की तलवार का एक जोरदार प्रहार किया जिससे तलवार गाजर की तरह गले को काट कर नीचे के पत्थर में जा धंसी । यह चमत्कार दिखाकर उसने राना से किनारा कर लिया और चम्बा के राजा के पास चला गया । एक वर्ष के अनन्तर वह चम्बे के राजा के भाई वहत्तरदेव के साथ फौज लेकर बन्दरालता आया और इसे जीतकर चम्बा राज्य का अंग बना दिया । राम नगर के अड़ोस-पड़ोस में कुछ ऐसे स्थान हैं जो घुरु वजीर का स्मरण दिलाते हैं । उनमें से एक घुरु के समय का वड़ का पेड़ है जिसे 'घराट-वड़ी' कहते हैं और कुछ 'कुर्ता' गांव में रानाओं के समय की इमारतों की नींवें हैं ।

श्री नरसिंहदास नर्गिस ने अपनी पुस्तक 'डोगरा देश' में जो चम्बे के राजाओं की वंशावली दी है उसके अनुसार वहत्तरदेव राजा जयस्तम्भ के वंश में पच्चीसवीं पीढ़ी नीचे हुआ था । जयस्तम्भ राजा हेमाद्रि का पुत्र था और ई० सन् की पहली सदी के आरम्भ में पैदा हुआ था । यदि हम सर्व-सम्मत नियम के अनुसार हर एक पीढ़ी के राजा का औसत शासनकाल २० वर्ष मानें तो २५ पीढ़ियों का संयुक्त शासन काल ५०० (२५ × २०) वर्ष होता है । श्री नर्गिस की दी बंशावली के मुताबिक राजा वहत्तरदेव के आगे राजाओं की चौदह पीढ़ियों ने राज किया, जिनका २० वर्ष प्रति राजा के हिसाब से २८० (१४ × २०) काल बैठता है । इन ३९ (२५ + १४) पीढ़ियों का शासन काल ७८० वर्ष बनता है, अर्थात् इन ३९ या चालीस राजाओं ने ईस्वी सन् के आरम्भ से ई० ७८० तक चम्बा तथा बन्दरालता पर शासन किया । उनतालीसवीं पीढ़ी में बंदरालता का राजा दीवान इंदरदेव था । पूर्वोक्त गणना के अनुसार इंदरदेव ई० ८ वीं सदी के अन्त में बन्दरालता का शासक होना चाहिए ।

परन्तु श्री नर्गिस लिखते हैं कि दीवान इन्द्रदेव जम्मू के राजा रणजीत देव (ई० १७३५-८१) का समकालीन और उसके अधीन सामन्त था । अठारहवीं सदी के मध्य में रणजीत देव के बेटे ब्रजराजदेव ने कांगड़े पर हमला किया तो उसकी सहायता के लिए दीवान इन्द्रदेव ने अपना छोटा बेटा जयसिंह भेजा था जिसने इस लड़ाई में बड़ी

बहादुरी दिखाई। इस का उल्लेख 'व्रजराज-पंचासा' में भी आता है। इसमें संदेह नहीं कि दीवान इन्द्रदेव जम्पू के राजा रणजीतदेव का समकालीन था। परन्तु श्री नर्गिस की दी हुई ३९ पीढ़ियों के शासनकाल की गणना के अनुसार वह इन पीढ़ियों का अन्तिम राजा था और २० वर्ष प्रति पीढ़ी के हिसाब से ई० आठवीं सदी के अन्त में आना चाहिए था। इसलिए पीढ़ियों की गणना जो उन्होंने दी है वह सत्य नहीं है। पता नहीं उन्होंने इन उन्नतालीस पीढ़ियों की गणना और विवरण कहां से प्राप्त किए। उनको चाहिए था कि वे प्राप्ति स्थान का पता पृष्ठ के नीचे पाद-टिप्पणी में देते जिससे इतिहास के विद्वान् उसे प्रामाणिक मान सकते। इस के अभाव में श्री नर्गिस का दिया ३९ पीढ़ियों का वर्णन और अन्त में दीवान इन्द्रदेव को अन्तिम पीढ़ी का राजा लिखना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व नहीं रखता।

श्री नर्गिस के अनुसार पहली उन्नीस पीढ़ियों का अन्तिम राजा शील देव था। बीस वर्ष प्रति पीढ़ी के हिसाब से उसका काल ई० ३८० पड़ता है। वे पुन: लिखते हैं कि शीलदेव के पांच पीढ़ी बाद, अर्थात् ई० ४८० के लगभग चम्बा के राजवश में राजा डोडक वर्मन् हुए। इस राजा के दो बेटे थे। विचित्तर देव और बहत्तर देव। छोटे बेटे बहत्तर देव ने बन्दरालता को जीतकर नये राज्य की स्थापना की और स्वयं उस का शासक बना। इस गणना के अनुसार बहत्तर देव ईसवी पांचवीं सदी के अन्त में बन्दरालता का शासक होना चाहिए। आगे चलकर श्री नर्गिस लिखते हैं कि विक्रम सं० १८३ (अर्थात् ई० १२६) के आसपास यह प्रान्त जहां इस समय रामनगर की तहसील है स्वतन्त्र राजाओं के अधिकार में था। ये राजे घुरु' नामक एक जमींदार की सन्तान थे और इन्हें आजकल घोरन ठक्कर कहते हैं। रानाओं के अत्याचार से दु:खी होकर लोग चम्बा के राजा बचित्तरदेव के पास पहुंचे जिसने फौज देकर अपने छोटे भाई बहत्तर देव को इस प्रान्त में भेजा। राजे हार गए। बहत्तर देव स्वयं राजा बन गया और अपनी राजधानी 'नगर' उस स्थान पर बसाई जहां इस समय रामनगर है। बहत्तर देव क्योंकि बन्दराल जाति का चन्द्रवंशी राजपूत था इसलिए उस समय से लेकर यह सारा इलाका बन्दरालता कहलाने लगा।

श्री नर्गिस की काल-गणना के अनुसार राजा बहत्तर देव छठी सदी ई० के आरम्भ में बन्दरालता का राजा बना होगा। परन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि डा० फोगल की दी हुई चम्बा राजाओं की वंशावली में बचित्तर देव या बहत्तर देव नाम के कोई शासक नहीं मिलते। इसलिए अन्तिम १४ पीढ़ियों में दिए हुए राजाओं के नाम किसी की कपोल कल्पना प्रतीत होती है और ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखती।

भौगोलिक स्थिति

बन्दरालता प्रदेश (आधुनिक रामनगर तहसील) पहाड़ियों से अटा पड़ा है। इसके पूर्व में बसोहली और भडडु, दक्षिण में मनकोट (आधुनिक रामकोट तहसील), पश्चिम में भोती, किरमची और चनेनी, उत्तर में भद्रवाह और किशतवाड़ हैं। बन्दराल राज्य का अंतिम राजा चन्द्रधर देव था। इसके समय में बन्दरालता पर महाराज रणजीत सिंह ने अधिकार कर लिया और राजा देश त्याग, अंग्रेजों की शरण में, जिला अम्बाला में जाकर बस गया।

रामनगर कसबे के उत्तर में एक पहाड़ियों का सिलासिला है जिसे घलून धार कहते हैं। कसबा स्वयं एक ऊंचे मैदान पर स्थित है जो लम्बाई में डेढ़ मील और चौड़ाई में आधा मील के करीब फैला है। मैदान के पश्चिम में एक गहरा नाला है जो घलून-धार से निकल कर रामनगर की ओर बहता है। पूर्व की दिशा में ५००० फुट की बुलंदी तक उठी हुई पर्वत-शृंखला है जिस पर चीड़ के वृक्षों का घना जंगल है जिस में कहीं कहीं छोटे छोटे गांव दिखाई देते हैं। अगर इसके केन्द्र में से लम्ब के समान एक दूसरी को काटती हुई दो रेखाएं खींची जाएं तो यह चार बराबर भागों में बंट जाता है (देखो चित्र १)। ऊपर के दाएं हाथ वाले चतुर्थांश में राजा सुचेत सिंह और राजा राम सिंह के महल बने हैं और बाग के बीच बारादरी भी है। बाएं हाथ वाले चतुर्थांश (नं० १) में कोई प्राचीन स्मारक नहीं हैं, केवल एक आधुनिक पी. डवल्यू. डी. का विश्राम-गृह है जो महाराजा हरिसिंह के काल में बनाया गया था। नीचे के दाएं हाथ वाले चतुर्थांश (नं० ४) में आधुनिक रामनगर का शहर बसा है। नीचे के बाएं चतुर्थांश (नं० ३) में बन्दरालता राजवंश के समय के ध्वंसों के निशान हैं जो लुप्त हो रहे हैं। मैदान के ठीक मध्य में राजा सुचेत सिंह का बनवाया किला है जो प्राचीनतर बन्दराल काल के किले की नींव पर स्थित है। किले के सामने रानी गुलेरी और उसकी दो दासियों की पूर्वाभिमुख बनी समाधियां हैं। रानी और दासियां राजा की अकाल मृत्यु का समाचार पाकर सन् १८४४ में सती हो गयी थीं। पश्चिम में गहरे नाले के किनारे बहुत सी प्राचीन बावड़ियां हैं जो अब जीर्ण शीर्ण दशा में पड़ी हैं।

राजमहल

रामनगर के राजमहल दो काल के हैं। पुराना महल राजा सुचेत सिंह ने उस समय बनवाया था जब म० रणजीत सिंह ने रामनगर की जागीर उन्हें प्रदान की। दूसरा महल म० रणवीर सिंह के दूसरे पुत्र राजा रामसिंह की कृति है। यह उस समय बनाया गया जब उसके पिता ने रामनगर का इलाका उसे जागीर के रूप में दिया। यह महल प्राचीन महलों के साथ ही एक तरफ बना है। महल ऊंची भूमि पर स्थित

हैं। मुख्य द्वार तक पहुंचने के लिए एक ढलुआं रास्ता ऊपर को उठता हुआ महल की ओर जाता है। मुख्यद्वार के दोनों पार्श्वों में राजा सुचेतसिंह के निवास-कक्ष बने हैं। भित्तिचित्र मुख्यद्वार के बाईं ओर वाले पक्ष में तीन कमरों में बने हैं। इन कमरों में प्रवेश करने के लिये मुख्य-द्वार के साथ ही छोटा द्वार है। यह द्वार एक बड़े हाल में खुलता है जो ३०×१२ वर्ग फुट का कमरा है। आजकल इस हाल में तहसील के मुनसिफ की अदालत लगती है। कमरे के दूसरे सिरे पर एक ऊंची वेदि (प्लेटफार्म) है जहां दरबार के समय राजा सुचेत सिंह बैठा करते थे। इस कमरे की दीवारों पर फर्श से चार फुट की ऊंचाई तक भित्तिचित्र बने थे। चित्र दो बड़े बांधों मे विभक्त हैं। नीचे के बांध में जो फर्श से १॥ फुट की ऊंचाई तक फैला है लता, पल्लव, वृक्ष आदि अभिप्रायों की भरमार है। ऊपर के बांध में, जो १॥ फुट से ४ फुट तक फैला है, पौराणिक अभिप्राय, तथा युद्ध और राजदरबारों के चित्र बने हैं। इनमें अधिकांश दृश्य नष्ट हो चुके हैं।

पूर्वोक्त बड़े कमरे के पीछे दो छोटे कमरे हैं जिनमें से हर एक १२×१२ वर्ग फुट आयाम का है। पहले कमरे को शीश महल कहते हैं। भूतल से २॥ फुट की ऊंचाई तक इस की दीवारों पर महराबदार अलंकरण बने हैं जिनके अन्दर फूलों से लदे पौधे दिखाए गए हैं। ये सब अलंकरण-अभिप्राय सफेद चूने के मसाले से उभारदार बनाए गए थे। बनाने के बाद इनको विविध रंगों से शोभित किया गया था। इस ऊंचाई से ऊपर छत तक जितनी दीवार की सतह है उस पर रंगीन शीशों के टुकड़ों की बारीक जड़ाई की गई है। सतह से उभरे हुए शीशों के किनारों पर सोने के पानी का मुल्लमा चढ़ाकर मीनाकारी से सौंदर्य को और भी बढ़ाया गया था। कहीं कहीं दीवार पर धंसे हुए फलक बने हैं, जहां आरम्भ में कागज पर चित्रित मूर्तियां लगी थीं। परन्तु उत्तरकाल में किसी ने इन मूर्तियों को वहां से उखाड़ कर इनकी जगह आधुनिक रंगीन यूरपीन चित्रों को लगा दिया था। इसके प्रमाण अब भी कहीं कहीं दीवारों पर मिलते हैं। कहा जाता है कि यह अदला-बदली महाराजा हरिसिंह के समय में उनके मिनिस्टर-इन-वेटिंग वेकफील्ड ने की थी।

पूर्वोक्त शीशमहल के साथ का समानाकार कमरा रंग-महल कहलाता है। दोनों कमरों के बीच आने जाने का रास्ता है। यह रंगमहल अपने भित्तिचित्रों के कारण बहुत प्रसिद्ध है और इसी भव्य चित्रकला के नाते रामनगर कला-परीक्षकों में दूर दूर तक विख्यात है। इस कमरे में बने भित्तिचित्रों को हम चित्रों की स्थिति के अनुसार तीन बड़े बांधों में विभक्त कर सकते हैं। (१) नीचे का बांध, भूतल से लेकर २॥ फुट तक ऊंचा, (२) २॥ फुट की ऊंचाई से लेकर ६॥ फुट की ऊंचाई तक, प्राय: चार फुट चौड़ा बांध जिसे मध्यवर्ती बांध भी कह सकते हैं, (३) बांध (२) के ऊपर का

बांध जो छत तक व्याप्त है।

नीचे रंगमहल के महत्वपूर्ण भित्तिचित्रों का पूर्वोक्त तीन बांधों के क्रम से वर्णन किया गया है।

दक्षिणी दीवार

इस दीवार के ऊपर के बांध (नं० ३) में तीन फलक हैं जिन्हें १, २, ३ की संख्या दी गयी है :—

फलक —यह फलक बांध के मध्य में बना है। इस में बने दृश्य में सिख फौज अफगान फौज से लड़ रही है।

फलक २—यह फलक पूर्वोक्त फलक १ के बिलकुल नीचे दरवाजे के ऊपर बना है। इसमें राजा सुचेतसिंह को होली खेलते दिखाया गया है। राजा साहब दाईं तरफ कुर्सी पर बैठे हैं। उनके तीन ओर उनके दरबारी हैं। स्त्रियों का एक दल मध्य में खड़ा गुलाल तथा रंगीन पानी सुचेतसिंह पर फैंक रहा है। एक कोने में रंगीन पानी के बरतन पड़े हैं। कुछ आदमी अपनी पिचकारियों में रंगीन पानी भर रहे हैं। यह होली दृश्य बहुत मनोहर है और राजा संसार चन्द के समय के कांगड़ा कलम के होली दृश्यों का स्मरण कराता है।

फलक ३—ऊपर के बांध के बाएं कोने पर। इस फलक में डोगरा सेना को पठानों से लड़ते दिखाया गया है। दोनों पक्षों के सिपाहियों के पास बंदूकें, तलवारें, भाले और ढालें हैं।

फलक ४—इस फलक में भी लड़ाई का दृश्य है। हाथी पर सवार एक राजा अफगान फौज से लड़ रहा है।

ऊपर के फलकों में प्रदर्शित तीन युद्ध-दृश्य सम्भवतः राजा गुलाब सिंह, राजा ध्यान सिंह और राजा सुचेत सिंह की वीरता पूर्ण लड़ाइयों का प्रदर्शन करते हैं।

फलक ५—यह फलक पूर्व-वर्णित फलक ३ के नीचे है। इसमें राजा सुचेत सिंह घोड़े पर सवार आगे जा रहा है. उसके पीछे उसके दरबारी घोड़ों पर सवार आ रहे हैं। पैदल सिपाहियों का एक दल बन्दूकें लिये राजा साहब के आगे मार्च कर रहा है। एक शिकारी कुत्ता भी इनके साथ है।

फलक ६—यह फलक पूर्व वर्णित फलक ४ के नीचे बना है। इसमें राजा सुचेतसिंह को अपने महल में दरबारियों के साथ संगीत सुनते दिखाया गया है।

नीचे लिखे ७-१० संख्या के चार फलक दक्षिणी दीवार के दरवाजे के दाएं हाथ वाले खड़े बांध में बने हैं।

फलक ७—टोडी रागिणी, इसमें एक नायिका एक हाथ से वृक्ष की डाल पकड़े खड़ी

है। उसके सामने खड़ा हरिण उसकी ओर देख रहा है।

फलक ८—महल का दृश्य, फलक के निचले भाग में तीन परिचारक राजा को नहला रहे हैं। ऊपर के भागों में उसके पास तीन स्त्रियां खड़ी हैं।

फलक ९ – नायिका और उसकी दो दासियां

फलक १०—नायिका वृक्ष पर बैठे तोते को चूरी खिला रही है।

नीचे के चार फलक (११-१४) दक्षिणी दीवार के दरवाजे के बाएं हाथ वाले खड़े बांध में बने हैं।

फलक ११—भगवान् राम, लक्ष्मण तथा हनुमान के साथ। हनुमान् भगवान् की परिचर्या कर रहा है और लक्ष्मण भगवान् के पीछे खड़ा चंवर झुला रहा है।

फलक १२—इस फलक में बना चित्र नष्ट हो चुका है और उस पर बाद में पलस्तर का लेप भी किसी ने चढ़ा दिया है।

फलक १३ —यह चित्र भी प्राय: नष्ट हो चुका है।

फलक १४—नायिका और दो दासियां।

फलक १५—शिव और पार्वती, यह फलक दरवाजे के बाएं पार्श्व में बना है।

फलक १६—कृष्ण और राधा, वर्षा का दिन है। कृष्ण ने छाता उठाया है, राधा भी छाते के नीचे बैठी है पास में दो गाय हैं। सामने कमल-सरोवर है।

फलक १७—लैला-मजनू दृश्य। मजनू का शरीर कंकाल-मात्र है। लैला सुन्दर वेश में उसे खाने पीने की वस्तुएं दे रही है। एक कव्वा मजनू को असमर्थ जान उसके कंधे पर आ बैठा है।

फलक १८—राजा सुचेत सिंह, अश्वारोही शबीह। घोड़े के पीछे पियादा राजा के सिर पर छत्र ताने भाग रहा है। साथ शिकारी कुत्ता भी है। बिजली चमक रही है। फूलों की बहार है।

फलक १९ - भगवान् कृष्ण और गोपियां। यह फलक दक्षिणी दीवार के बाएं किनारे पर बना है।

फलक २०--कृष्ण द्वारा कालिय-मर्दन।

फलक २१—चतुर्मुख ब्रह्मा, आसीन मूर्ति।

फलक २२—खण्डिता नायिका। कृष्ण कमल का उपहार लिये राधा को मनाने आए हैं। राधा ने उपहार को ठुकरा दिया है। कृष्ण निराश लौट रहे हैं, पीछे मुड़कर राधा को देखते जा रहे हैं।

इस फलक पर अंकित लेख में लिखा है कि यह 'खंडित नायिका' का चित्र है।

पूर्वी दीवार

दायां पार्श्व, ऊपर की कतार। बड़े फलक

फलक २३—भगवान् राम, वनवास का दृश्य। दृश्य दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में राम, लक्ष्मण, सीता राजमहल को छोड़ कर बाहर आ रहे हैं। नर नारी देख रहे हैं। दूसरे भाग में तीनों वनवासी दंडक वन में घूम रहे हैं।

फलक २४—लंका युद्ध दृश्य, कुम्भकर्ण के नेतृत्व में राक्षस राम की सेना से लड़ रहे हैं।

फलक २५ - लंका युद्ध दृश्य, राम और रावण की सेनाओं में तुमुल युद्ध।

फलक २६—यह फलक पूर्व वर्णित फलक २३ के नीचे है। इसमें राजा सुचेत सिंह अश्वारोही दिखाया है। उनके पीछे बहुत से घुड़सवार हैं। आगे पैदल सिपाहियों का दल है जिन्होंने किर्चों वाली बन्दूकें कंधों पर उठाई हैं। अग्रभूमि में दो शिकारी कुत्ते हैं। प्यादा सुचेत सिंह के घोड़े के पीछे राजा के सिर पर छाता ताने साथ साथ भाग रहा है।

फलक २७—यह फलक दरवाजे के ऊपर और फलक २४ के नीचे है। इसमें राजा सुचेतसिंह दरबार में बैठा नर्तकियों का नाच देख रहा है।

फलक २८—यह फलक पूर्वोक्त फलक २ . के नीचे बना है। इसमें शिकार का दृश्य है। तीनों डोगरा राजे (गुलाब सिंह, ध्यानसिंह, सुचेत सिंह) घोड़ों पर सवार शेर के शिकार का दृश्य देख रहे हैं। बहुत से लोग जगल के दूसरे पार खड़े ढोल आदि बजा कर जानवरों को शिकारियों की ओर भगा रहे हैं। इस तरफ तीनों राजे घोड़ों पर सवार देख रहे हैं। एक वृक्ष पर बने मचान पर से शिकारी ने शेर को बन्दूक का निशाना बनाया है। ऊपर के रिक्त स्थान में शिकारी मुर्दा हिरन को कन्धों पर उठाए ले जा रहे हैं। नीचे बाएं कोने में एक शिकारी बाज को पकड़े हुए है जिसने अभी अभी एक कबूतर को मार गिराया है।

फलक २९—यह फलक ऊपर के फलक २८ के नीचे है। इनमें एक राजकीय समारोह का दृश्य है जिसमें हाथी घोड़े शामिल हैं।

फलक ३०—यह फलक पूर्व-वर्णित फलक २६ के नीचे बना है। इसमें राजा सुचेतसिंह के विवाह का दृश्य है। मंडप में कुल पुरोहित और पण्डित बैठे हैं। बहू कपड़ों में लिपटी राजा के पास बैठी है। उसके माता पिता, भाई बन्धु राजा के सामने बैठे हैं। राजा के आस पास वरपक्ष के सम्बन्धी खड़े हैं। विवाह-मंडप के बाहर राजा के दरबारी और नागरिक बधाई देने के लिये इकट्ठे हुए हैं।

पूर्वी दीवार के दाएं हाथ वाले सिरे पर एक खड़ा बांध है जिसमें चार फलक

बने हैं। इनको ऊपर से नीचे की ओर ३१-३४ का क्रमांक दिया गया है। वर्णन इस प्रकार है :—

फलक ३१—दो भक्त शिव की पूजा कर रहे हैं।

फलक ३२—शिव, वृक्ष के नीचे बैठे बाघांबर सी रहे हैं। सामने गणेश भांग छान रहे हैं। मध्य में पार्वती कार्तिक की सहायता से मुंड माला पिरो रही हैं। नीचे की खाली जगह में नन्दी और शेर वाहन है।

फलक ३३—नायिका हुक्का पी रही है। दासी हुक्का थामे बैठी है।

फलक ३४—महिषासुर मर्दिनी दुर्गा। दुर्गा शेर पर सवार है। शेर ने क्रोध में पूंछ ऊपर को उठाई हुई है।

दरवाजे के साथ दाईं ओर एक खड़ा बांध हैं जिसमें चार फलक बने हैं। ऊपर से नीचे की ओर इनकी संख्या ३५-३८ है।

फलक ३५—कृष्ण और राधा कृष्ण स्त्रीवेष में और राधा पुरुष वेश में दोनों ने एक दूसरे के वस्त्र परस्पर बदल लिये हैं।

फलक ३६—शिकार का दृश्य। शेर शिकारी पर आक्रमण कर रहा है। शिकारी शेर से द्वंद्व युद्ध कर रहा है।

फलक ३७—राम, लक्ष्मण और सीता। हनुमान से सेवित। लक्ष्मण भगवान राम के पांव से कांटा निकाल रहा है। हनुमान ने भगवान राम को पकड़ रखा है कि वे पीड़ा से बेचैन न हों। सीता एक तरफ खड़ी घूंघट में से देख रही है।

फलक ३८—चतुर्भुज विष्णु, दो भक्तों द्वारा आराधित।

दरवाजे के बाईं ओर भी एक खड़ा बांध है जिसमें चार फलक बने हैं जिनके क्रमांक ३९-४२ तक हैं।

फलक ३९—गणेश! ऋद्धि तथा सिद्धि से सेवित।

फलक ४०—नायिका हुक्का पी रही है, पास दो दासियां हैं जिनमें से एक तंत्री वादय बजा रही है।

फलक ४१—दो पहाड़ी राजा।

फलक ४२—शिव, अर्धनारीश्वर के रूप में। दृश्य में दो स्त्रियां और गरुड़ भी हैं।

फलक ४३—शिव पंचवक्र, पार्वती शिव के अंक में बैठी है। एक भक्त सामने खड़ा है। नीचे नंदी वाहन है।

फलक ४४—कृष्ण और राधा। कदम्ब वृक्ष पर बैठे हैं। राधा कृष्ण से आग्रह कर रही है कि वे वंशी बजाएं।

उत्तरी दीवार

इसी दीवार के मध्य में एक खिड़की है। दीवार पर बने ऊपर के बांध में चार बड़े फलक हैं, जिनके क्रमांक ४५-४६, ४७ और ४८ हैं। वर्णन नीचे दिया गया है।

फलक ४५—चीर हरण दृश्य, भागवतपुराण के अनुसार।

फलक ४६—युद्ध दृश्य, विवरण अज्ञात।

फलक ४७—युद्ध दृश्य। यह दृश्य बहुत महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। मध्य में एक किलानुमा महल पर शत्रु ने आक्रमण किया है। दाएं बाएं भारी तोपें किले पर आग बरसा रही है। लड़ाई किले के चारों ओर तथा अंदर भी हो रही है। हाथियों, घोड़ों पर तथा पैदल सेना किले पर धावा बोल रही है।

फलक ४८—युद्ध का दृश्य, विवरण अज्ञात।

नीचे के बांध में तीन फलक हैं (४९-५१) दाएं से बाएं इनका विवरण इस प्रकार है :—

फलक ४९—कृष्ण और राधा। वृक्ष के नीचे ऊंचे आसन पर विराजमान। गोप तथा गोपियों के संग।

फलक ५०—उत्सव का दृश्य, धुंधला। केवल कुछ स्त्री-आकृतियां वाद्ययंत्र लिये दिखाई देती हैं।

फलक ५१— कृष्ण ऊपर बारादरी में राधा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राधा को कुछ स्त्रियां कृष्ण के पास ले जा रही है।

५२ से ५५ संख्या के फलक दरवाजे के दाहिने सिरे पर जहां दो दीवारें मिलती हैं एक खड़े बांध में बने हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है :—

फलक ५२—दुर्गा, सिंह-वाहिनी।

फलक ५३—कोई राजा अंजलि से पानी पी रहा है। पिआऊ पर बैठी स्त्री राजा की अंजलि में पानी डाल रही है। एक आदमी, स्त्री और बालक सामने खड़े अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

फलक ५४—नायिका और उसकी दासी, घर के अन्दर।

फलक ५५—वही दृश्य जो पहले फलक ५४ में वर्णित है।

फलक ५६—यशोदा और बालकृष्ण। कृष्ण आंगन में खेल रहे हैं।

फलक ५७—कोई राजा घोड़े पर सवार भाले से शेर का शिकार कर रहा है।

फलक ५८—एक संत पुस्तक पढ़ रहा है। उसके सामने एक मनुष्य बन्दूक लिये खड़ा है। आगे मोरों की जोड़ी है।

फलक ५९—अभिसारिका नायिका। अंधेरी रात में संकेत-स्थान की ओर जा

रही है। रास्ता सांप, भूत, चुड़ैल आदि से संकुल है। ऊपर वर्णित ५६ से ५९ क्रमांक के फलक खिड़की के दाहिने पार्श्व में बने हैं।

आगे के चार फलक (क्रमांक ६०-६३) खिड़की के बाएं पार्श्व में खड़े बांध में बने है। सब फलक जीर्ण शीर्ण दशा में हैं। इन पर बने चित्र प्रायः लुप्त हो चुके हैं।

आगे के चार फलक (क्रमांक ६४-६७) दीवार के बाए सिरे पर बने हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

फलक ६४—टोडी रागिणी। फलक ७ के समानरूप।

फलक ६५—नायिका। नायिका को दो स्त्रियां नायक के पास ले जा रही हैं, जो ऊपर बारादरी में उसके आने की प्रतीक्षा कर रहा है।

फलक ६६—रात का दृश्य। अभिसारिका छत पर लेटी प्रतीक्षा में तारे गिन रही है। पास दासी है।

फलक ६७—गजेन्द्र मोक्ष दृश्य।

पश्चिमी दीवार

सबसे ऊपर का बांध जिस पर तीन फलक (क्रमांक ६८-७०) बने हैं। दाए से बाए उनका वर्णन इस प्रकार है—

फलक ६८—महिषासुर मर्दिनी। महिषासुर के साथ उसकी असंख्य सेना है। दुर्गा अकेली लड़ रही है।

फलक ६९—महाकाली। असुरों का संहार करती हुई। उसके भयकर रूप को देख देवता भी भाग रहे हैं।

फलक ७०—महिषासुर मर्दिनी।

आगे के पांच फलक (क्रमांक ७१-७९) मध्यवर्ती बांध में बने हैं। उनका वर्णन इस प्रकार है :—

फलक ७१—कृष्ण और राधा। विहार करते हुए। दोनों दौड़ लगा रहे हैं। कृष्ण राधा को भुजा से पकड़ सहारा दे रहे हैं। राधा के वस्त्र हवा में उड़ रहे हैं।

फलक ७२—राजा सुचेतसिंह। यह चित्र फलक पांच में दिये चित्र के समान है।

फलक ७३-यह फलक मध्यवर्ती खिड़की के ऊपर बना है। इसमें महाराजा रणजीतसिंह के दरबार का दृश्य है। महाराजा किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का स्वागत कर रहे हैं। महाराजा तथा उसका महमान कुर्सियों पर विराजमान हैं। ध्यानसिंह और

सुचेतसिंह महाराजा के सामने बैठे हैं और उनके पीछे दो आदमी खड़े हैं। दूर दाएं किनारे पर एक पहरेदार बंदूक लिए खड़ा है। महाराजा के पीछे महल के अन्दरूनी भाग की झलक है जिसमें कुछ मनुष्य एक-दूसरे को वस्तुएं दे रहे हैं। बहुत चहल पहल है। ऐसा प्रतीत होता है कि पण्डित जल्ला वन का दान कर रहा है। महाराजा के पीछे खड़ा मनुष्य कोई अच्छा व्यक्ति प्रतीत होता है। सम्भवत: इस दृश्य में किसी महत्वपूर्ण राजनैतिक घटना का चित्रण किया गया है।

फलक ७४—रामायण दृश्य—दाईं ओर राम और सीता बैठे हैं। पास हनुमान् और लक्ष्मण सेवक के रूप में खड़े हैं। मध्य में कोई असुर राजा और दो राजकीय व्यक्ति हैं। बाईं ओर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र आदि देवता हैं।

फलक ७५—सम्भवत: इस फलक में पूरण भगत की कहानी का चित्रण है। शायद पूरण भगत रानी सुंदरां से भिक्षा की याचना कर रहा है?

फलक ७६—यह फलक दीवार के दाएं किनारे बना है। इसमें शिलारूप अहल्या को भगवान् राम के चरण स्पर्श से दिव्यरूप धारण करते दिखाया गया है।

फलक ७७—यह फलक दीवार के बाएं अन्त पर फलक ७५ के नीचे बना है। इसमें एक राजा किसी महात्मा से दीक्षा ले रहा है। फलक के दाएं भाग में राजा का मुंडन संस्कार हो रहा है। जोगी अथवा संन्यासी बनने के पहले मुंडन आवश्यक था। सम्भवत: इसमें पूरण भगत का गुरु गोरखनाथ का शिष्य बनते दिखाया गया है।

क्रमांक १ से ७७ फलकों के अन्तर्गत जिन चित्रों का ऊपर वर्णन किया गया है इनके अतिरिक्त फूल पत्ती, लता आदि शुद्ध अलंकरण मय चित्र भी हैं जो खिड़कियों के पार्श्वों, आदि में बने हैं। वृक्षों और लताओं के पत्रछादों के बीच सुए और बुलबुल आदि पक्षियों को विहार करते दिखलाया गया है। शीशमहल की खिड़कियों के पार्श्वों में नायिकाओं के मनोहर चित्र बने हैं।

उपसंहार

जिन चित्रों का ऊपर वर्णन किया गया है ये राजा सुचेतसिंह के समय के हैं और ई० १८३० और १८४३ के बीच बनाए गये थे। सन् १८२२ के आसपास राजा सुचेतसिंह को रामनगर की जागीर मिली थी और १८४४ में उनका देहान्त हो गया था। ई० १८२२ के बाद कुछ वर्ष उनको जागीर में अपनी स्थिति दृढ़ करने में अवश्य लगे होंगे। अत: यही युक्ति संगत प्रतीत होता है कि ये चित्र अलंकरण सन्

१८३० और १८४८ के बीच ही बनें होंगे। चित्रों की शैली, मानव आकृतियां और अन्य कई विशिष्टताओं के कारण स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये चित्र कांगड़ा कलम की देन हैं जिनमें उस अज्ञात: चित्रकला का भी प्रभाव है जो उस समय पंजाब में प्रचलित थी। इसमें सन्देह नहीं कि अपना महल बनाने और इसे अलंकृत करने के लिए राजा सुचेतसिंह ने कुछ राज और चित्रकार कांगड़ा से भी मंगवाए होंगे क्योंकि उस समय कांगड़ा अपनी अद्भुत चित्रकला के लिए बहुत प्रसिद्ध था। कुछ कलाकार लाहौर दरबार से भी लाये गये होंगे क्योंकि राजा सुचेतसिंह का लाहौर दरबार में बड़ा प्रभाव था। उन्नीसवीं सदी के प्रथम चरण में जबकि म० रणजीतसिंह के भाग्य का सितारा दिन ब दिन चढ़ाई पर था और कांगड़ा में राजा संसारचन्द का प्रभाव कम हो रहा था तो कटोच राजा के बहुत से प्रसिद्ध कलाकार म० रणजीतसिंह के दरबार में आ गए थे। इन्होने पंजाब की सिख चित्रकला को अधिक समृद्ध किया था। राजा सुचेतसिंह के लिए इन कलाकारों को रामनगर लाना कठिन नहीं था। यही कारण है कि रामनगर की चित्रकला में कांगड़ा तथा सिख चित्रकलाओं की स्पष्ट छाप है।

इस तथ्य के समर्थन में कि राजा सुचेतसिंह ने जिन कलाकारों को रामनगर बुलाया वे कांगड़ा और सिख काल की चित्रकलाओं में प्रवीण थे, निम्नलिखित तुलनात्मक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

१. इस लेख में दिये फलक १ में एक नायिका की आकृति कार्ल खांडलवाला की पुस्तक 'पहाड़ी मिनिएचर्स' में दिए चित्र न. ३०० से बहुत मिलती है। इस चित्र को खांडलवाला ने कांगड़ा-कलम की कृति कहा है। इसका काल ई. १८वीं सदी का पूर्वार्ध है।

२. इस लेख में दिए फलक २८ में वर्णित रामनगर का भित्तिचित्र कार्ल खांडलवाला की पूर्वोक्त पुस्तक के चित्र (fig. 6) से बहुत सादृश्य रखता है। खांडलवाला ने इसे ई. १८२५-१८ ० के मध्य की सिख चित्रकला का उदाहरण बतलाया है। इसमें चित्रित चीता, कुत्ते और बाज से शिकार करने वाला शिकारी तुलना के विशेष विषय हैं।

३. रामनगर महल के फलक २ में राजा सुचेतसिंह को अश्वारोही दिखाया है। राजा के पीछे छत्रधारी मनुष्य और कुत्ता बने हैं। यह चित्र खांडलवाला की पूर्वोक्त पुस्तक के चित्र ३०५ से संतुलित किया जा सकता हैं। इसकी तारीख ई. १८३८ है और यह सिख-कांगड़ा कलम की कृति है। ऐसी ही राजा सुचेतसिंह की शबीह बास्टन म्यूजियम में भी है। (बास्टन म्यूजियम केटेलाग, फलक १२३, चित्र १०९१)

ऐसे और भी उदाहरण हैं परन्तु विस्तार भय से उन्हें इस लेख में देना सम्भव नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि रामनगर (बंदरालता) में प्राक् सुचेतसिंह काल में भी चित्रकला रही होगी। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि कार्ल खांडलवाला ने अपनी पूर्वोक्त पुस्तक में बंदरालता के कुछ राजाओं के शबीह चित्र छापे हैं जो सिख काल के पहले इस इलाके पर शासन करते थे। उदाहरणार्थ उसके ६३, ६६ चित्रों को देखिये।

* * *

लघुता की महत्ता

बोलता कहिल, एजे क्षुद्र मउचाक,
एरि तरे मधुकर एत करे जाँक !
मधुकर कहे तारे, तुमि एसो भाई,
आरो क्षुद्र मउचाक रचो देखे जाई॥

—वर्र एक दिन मधुकर से बोली—

"कितना क्षुद्र है यह तुम्हारा मधुकोष और इसी पर तुम इतना अभिमान किया करते हो।" मधुकर ने नम्रतापूर्वक कहा—"तुम आ जाओ, भाई ! इससे छोटा ही एक मधुकोष बना दो, जरा मैं भी देख लूँ !"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मौत आयी किन्तु धोखा खा गयी

विष्णुकान्त शास्त्री

घड़ी दो घड़ी में ही मौत की आशंका हो तो हमारी संघर्ष शक्ति, हमारी समस्त संवेदनाएं कितनी तीव्र हो जाती हैं उन घड़ियों में। फिर यदि परिस्थितियों से जूझकर भी वे धीरे धीरे दुर्बल पड़ती जायें और धीरे धीरे वह आतंककारी विन्दु निकट आता जाये जिसके एक ओर जीवन की ज्योति हो, दूसरी ओर मौत का अंधकार, तो अपनी कर्तृत्व शक्ति से बड़ी किसी और शक्ति का सहारा पाने के लिए हम छटपटा उठते हैं। उस छटपटाहट का अनुभव ही हो सकता है, वह शब्दों के परे की अनुभूति है, फिर भी अपने जीवन के ऐसे दो प्रसंगों को लिखने की चेष्टा अपनी डायरी में मैंने की थी उसी के कुछ अंश निवेदित हैं।

समुद्र के प्रति मेरा अनुराग साधारण की सीमा को लांघ चुका है। अवकाश मिलते ही पुरी या गोपालपुर पहुंच जाता हूं और प्रतिदिन तीन चार घण्टे समुद्र की लहरों में खेलता रहता हूं। १९६० की मई के उत्तरार्ध में मैं पुरी में ही था। यदि आप मई में पुरी जाएं तो देखेंगे कि किनारों की ओर समुद्र में तीन स्थानों पर ऊंची ऊंची तरंगें टूटती हैं, पहली तो एकदम किनारे पर जो नये लोगों के लिए समुद्र को आतंक का विषय बनाये रखती है, तीसरी किनारे से काफी दूर पर टूटती है और दूसरी दोनों के बीच।

मैं न केवल देर तक नहाता था बल्कि दूर तक तैरा भी करता था अतः शीघ्र ही पांच, छः तरुण स्नानार्थी मेरे शिष्य हो गये, जिनमें सोमनाथ नामक एक बंगाली किशोर बहुत उत्साही था। अध्यापक हूं सिखाना तो मेरा पेशा ही ठहरा, जितना जानता था, उतना उन्हें भी समुद्र में नहाने का गुर बता दिया। हम लोगों की टोली कई बार तीसरी तरंग को भी पार कर अपनी संतरण कुशलता का सिक्का अन्य स्नानार्थियों पर जमा चुकी थी। टोली का नायक होने के कारण किनारे पर

घुटने से लेकर कमर बराबर पानी में नहाने वाले स्त्री पुरुषों की प्रशंसा भरी दृष्टि का उपहार मुझे सहज ही मिलता रहता है।

ऐसे में आयी २९ मई। उस दिन समुद्र बहुत उग्र था और हम लोग तीसरी तरंग की बात तो दूर रही, दूसरी भी पार नहीं कर सके। लगा कि लोगों के सामने हम लोगों की हेठी हो गयी। आहत स्वाभिमान ने प्रेरणा दी कि सुबह का अधूरा काम शाम को पूरा किया जाये। तीसरी तरंग को पार करने का निश्चय कर सोमनाथ के साथ साथ शाम को साढ़े तीन के करीब मैं समुद्र में प्रविष्ट हुआ।

समुद्र प्रातःकाल की तुलना में शान्त था। हम लोग आनन्दपूर्वक हंसते बोलते आगे बढ़ने लगे। आसानी से दूसरी तरंग पार कर गये। तीसरी तरंग के पास पहुंचते-पहुंचते लगा कि तरंगें टेढ़ी मेढ़ी टूट रही हैं। केवल सामने से ही नहीं कभी-कभी अगल-बगल से भी तरंगों के झकोरे आ जाते हैं। एक सांस से तैरने के कारण कुछ थकावट भी महसूस हो रही थी। मन के कहा—तीसरी तरंग को पार करने का हठ खतरनाक है, सोमनाथ भी लौटना चाहता था। हम लोग लौटे।

किनारे की ओर मुंह घुमाने पर पता चला कि हम लोग काफी भीतर आ चुके हैं। अपने होटल से काफी बह भी चुके हैं। थोड़ी देर तक तैरने के बाद लगा कि हम लोग किनारे की ओर बढ़ नहीं पा रहे हैं और धीरे धीरे बहते जा रहे हैं। सोमनाथ ने चिल्लाकर कहा, "हम लोग बह रहे हैं...... शायद 'करेण्ट' में पड़ गये हैं. तेजी से तैरिये।" और वह तेजी से पानी काट कर आगे बढ़ने लगा। मैंने भी यथासंभव तेजी से तैरना शुरू किया। लेकिन मेरा शरीर स्थूल हो चला है, मैं धीरे धीरे घण्टों तैर सकता हूं किन्तु तेजी से तैरने पर शीघ्र ही दम फूल जाता है। वही इस बार भी हुआ। बहुत जल्दी मेरा दम फूल गया, किन्तु किनारा तो करीब करीब उतनी ही दूर था। सोमनाथ आगे बढ़ा जा रहा था, मैं पीछे पड़ता जा रहा था। मैंने फिर ज़ोर लगाया लेकिन सांस इतने ज़ोर से चल रही थी कि अधिक देर तक इस तरह तैरना संभव नहीं हो सका। मैंने सोमनाथ के साथ जाने की आशा छोड़ दी और धीरे धीरे तैरना शुरू किया। सोमनाथ एक छोटे से धब्बे के समान कुछ दूर आगे दिखायी पड़ रहा था, धीरे धीरे वह ओझल हो गया।

मुझे अकेलेपन की अनुभूति हुई। विशाल समुद्र, पीछे गरजती हुई तरंगें, धारा में बहता हुआ, हारा थका हांफता हुआ मैं और किनारा जो पास होते हुये भी कितनी दूर था। निराला की पंक्तियां कौंध गयीं :

'मैं अकेला,
देखता हूं, आ रही मेरे दिवस की सान्ध्य बेला।'

भय, आतंक......मौत का आतंक। सन्ध्या तो सचमुच घिरती चली आ रही है। क्या यहीं जीवन सन्ध्या हो जाएगी मेरे लिए। हाथ ठीक से चल नहीं

रहे हैं, सांस जैसे छाती में समा नहीं पा रही है और ये लहरें......बिना रुके आती जा रही हैं, किस तरह झकझोर देती हैं ये, मुंह में पानी. नाक में पानी, आंखों में पानी......और जब दौड़ती हुई नागिन की तरह लहराती हुई. काली काली दीवारों के समान ऊंची ऊंची विशाल जलराशि मुझे पार कर किनारे की ओर रेल पेल मचाती चली जाती है तो एक क्षण के लिए अपने को 'काले पानी' का बन्दी पाता हूं। यह नहीं कि ऐसे दृश्य इसके पहले नहीं देखे थे लेकिन बन्धुओं के साथ हास परिहास करते समय स्वस्थ अवस्था में देखे हुए ऐसे दृश्यों से इस समय की अवस्था के ये दृश्य कितने भिन्न हैं। समुद्री करेण्ट में पड़ा हुआ अकेला मैं......असहाय, प्रतिक्षण अधिकाधिक अवश होता जा रहा मैं!

हठात् आस्तिक श्रद्धालु मन ने कहा, नहीं, तुम अकेले नहीं हो, 'जले विष्णु: स्थले विष्णु......' परमात्मा साथ है, भय किस बात का, अनायास 'श्री राम जय राम जय जय राम' का अनवरत जप होने लगा। मैंने उलट कर तैरने की चेष्टा की। थोड़ी देर तक तैरने के बाद सीधे होकर देखा तो फिर लगा कि किनारा तो करीब करीब उतनी ही दूर है......पीछे मुड़कर देखा तो लगा कि शायद तीसरी तरंग के पास ही हूं......और तरंगें तो दौड़ कर आतीं, कभी कभी टूटती तो और भी झकझोर कर अधमरा बना जाती......सोमनाथ का कहीं पता न था ...वह शायद किनारे पहुंच चुका था। विकट समस्या थी......इतने दिनों के समुद्र स्नान का अनुभव कह रहा था कि एक बार यदि दूसरी तरंग के पास पहुंच सको तो फिर कोई भय नहीं वह आप ही थाह लगने लायक पानी में पटक देगी ... ..फिर तो मजे से सुस्ता कर किनारे पहुंचा जा सकता है। लेकिन हाय रे वह दूसरी तरंग।...... कब उसका अंग संग प्राप्त होगा? अब तो उलटे तैरना भी दूभर हो गया......अब तैरना असंभव है......इस समय यदि कोई मछुआ पास होता ...एक ट्यूब ही मिल जाता......बार बार पांव थाह के लिए ललच ललच कर नीचे होते थे किन्तु थाह कहां? सांस धौंकनी की तरह चल रही थी......चित्त विकल हो गया था...... एक प्रचण्ड लहर आयी ....लगा ऐसी दो तीन लहरें और आयीं तो अनर्थ हो जाएगा......पानी के नीचे से ऊपर आते आते छाती फटी नहीं यही आश्चर्य है। एक बार इच्छा हुई कि जोर से पुकारूं कि बचाने के लिए मछुआ भेजो......शायद अस्फुट सी पुकार उठी थी लेकिन तरंगों के हाहाकार में डूब गयी।

उस समय भी मेरे मन ने इस दुर्बलता के लिए मुझे धिक्कारा......प्रभु से अधिक भरोसा मछुए पर......प्रभु यदि नहीं बचायेंगे तो क्या मछुआ आकर बचा लेगा......और प्रभु यदि कृपा करेंगे तो फिर यह समुद्र ही क्या कर सकता है......और यदि यहीं मौत बदी है तो भी दुःख किस बात का? जगन्नाथ जी की पुरी में, समुद्र की गोद में, अनवरत 'श्री राम जय राम जय जय राम' का जप करते हुए मरना क्या साधारण भाग्य की बात है? मेरे मन ने जबर्दस्त पलटा खाया। मैंने

सोचा किनारे जाने की इतनी आतुरता क्यों ...क्यों न तैरना छोड़कर चित्त पड़ जाऊं, जो होना होगा, होगा । और फिर चित्त पड़ गया......कह नहीं सकता कितना आराम मिला......अंग अंग दर्द कर रहा था, लेटते ही ऐसा ल ा जैसे नींद आ जाएगी। एक प्रचण्ड लहर फिर आयी, सम्हल कर फिर तैरने लगा......प्रतीत हुआ कि लेटने से बड़ा लाभ हुआ है, नयी शक्ति मिली है, तुरन्त फिर चित लेट गया। समुद्र की तरंगों की दया पर अपने को पूर्ण रूपेण छोड़ दिया . बीच बीच में प्रचण्ड तरंगों के झकोरों से नाक आंख में पानी जाने के कारण छाती के बल तैरना पड़ता था लेकिन अवकाश मिलते ही मैं चित्त हो जाता था। थोड़ी देर बाद ऐसा लगा जैसे किनारा पास आ गया है। मैं चित पड़ा हुआ बहता जा रहा था ......अचानक यह क्या हुआ......बहुत जोरों से में उछाल दिया गया था, गहरे पानी में कई बार कलाबाजी खा कर जोरों से बालू से जा टकराया... —धम्म से जैसे किसी ने पीठ के बल पटक दिया था......वह स्पर्श कितना मधुर था कैसे बताऊं ? चोट तो लगी ही नहीं, आनन्द की बाढ़ आ गयी तो यही वह चिर अभिलषित दूसरी तरंग थी। मैं खड़ा हो गया......सचमुच मेरे पैर जमीन से लग गये थे और गले तक पानी में खड़ा था। तुलसीदास की इस पंक्ति का वास्तविक अर्थ मैं तभी समझ सका... ...'पैरत थके थाह जनु पाई'.. ...और कैसे थका जाता है। जय हो प्रभु तुम्हारी... ...अपनी असीम करुणा से एक बार फिर तुमने मुझे मौत के मुंह से उबारा।

एक बार फिर का अर्थ ही यह है कि इसके पहले भी कई बार 'जीवन मरण' की सन्धि रेखा को छू चुका हूं। एक प्रसंग और प्रस्तुत है।

बात २४ जनवरी १९५४, की है। 'कल्याणी कांग्रेस' देखने के लिए मैं अपने छोटे भाई श्रीकान्त के साथ दोपहर को निकला। स्यालदा स्टेशन पर मेरे मित्र राजेन्द्र शुक्ल मिले, उनके साथ उनके परिवार की दो महिलाएं भी थीं, किसी तरह हम लोग एक डिब्बे में खड़े होने की जगह पा सके। कल्याणी स्टेशन पर उतर कर मालूम हुआ कि कांग्रेस नगर वहां से चार मील दूर था। वहां तक जाने के लिए रिक्शा, बस, टैक्सी, के अलावा रेल की भी व्यवस्था थी। बसों में तिल रखने की जगह न थी, टैक्सियां नदारद थीं और रिक्शेवाले वहां तक जाने के लिए तीन चार रुपये मांगते थे। इसी समय कांग्रेस नगर की रेल आयी, एकदम भरी हुई, भरी हुई नहीं, लदी हुई। जहां कहीं भी मनुष्य अपने पैर जमा सकता था वहां लोग गुड़ चींटे की तरह चिपके हुए थे। छत भी खाली नहीं थी। लम्बी गाड़ी की दोनों ओर के दरवाज़ों पर लटकते हुए आदमियों के कारण ऐसी लग रही थी मानो कोई बहुत ऊंचा कटहल का पेड़ लेट गया हो और जगह जगह उसके तने पर मन भर के कटहल लटक रहे हों। हम लोगों की हिम्मत चढ़ने की नहीं हुई, लेकिन और चारा भी

क्या था ? राजेन्द्र ने कहा जनाने डिब्बे में औरतों के बैठने की जगह हो जाय तो हम लोग लटकते हुए च ा जायेंगे, थोड़ी ही दूर की बात है। मेरा दुर्भाग्य कि मैं इसे मान गया और जनाने डिब्बे में औरतों को खड़े रखने की जगह भी मिल गयी।

अब हम लोगों को लटकने के लिए जगह खोजनी थी। सब दरवाजों पर आदमी बुरी तरह से लटक रहे थे। हो सकता है कि अन्यत्र कहीं सुगमता पूर्वक लटकने की जगह मिल जाती किन्तु महिलाओं के साथ रहने की प्रवृत्ति ने हम लोगों को प्रेरित किया कि हम लोग उसी डिब्बे के दरवाजे के छड़ों को पकड़ कर लटकते हुए चलें। मैंने दोनों हाथों से दोनों छड़ों को पकड़ कर अपने को तोला तो मुझे विश्वास हुआ कि मैं सकुशल जा सकूंगा। मैं उतरा, श्रीकान्त जहां लटका हुआ था, वहां उसे देखने गया, वह एक छड़ को ही पकड़ कर लटकने वाला था। मैंने उससे कहा, "तुम भी उसी दरवाजे पर चलो, वहां दोनों छड़ों को पकड़ने की सुविधा है।" श्रीकान्त भी वहीं आ गया। इसी बीच संभवत: दो सज्जन और वहां चिपक गये थे। आठ दस तो पहले से ही थे। अब जो मैंने दोनों छड़ों को पकड़ा तो मालूम हुआ कि मुझे पहले से कहीं अधिक लटकना पड़ रहा है। दोनों बाहों के ऊपर ही सारे शरीर का बोझ था, पैरों को पांवदान पर टिकाया तो जरूर था किन्तु उससे कोई विशेष सहारा नहीं मिल रहा था। मैं जरा घबराया, मन ने कहा, उतर जाओ, जाने में खतरा है। हिचकिचाहट बढ़ ही रही थी कि गाड़ी ने सीटी दे दी। दुर्बुद्धि, हठ और होनी ने कहा, 'अजी इतनी कसरत करते हो, थोड़ी दूर का मामला है, क्या सम्हाल नहीं सकोगे ?' गाड़ी चलने लगी, उतरने की इच्छा के बावजूद मैं उतर नहीं सका। गाड़ी धीरे धीरे तेज हो रही थी। यद्यपि अत्यधिक भारी हुई होने के कारण ज्यादा तेज तो नहीं हुई किन्तु फिर भी गति साधारणतया अच्छी हो गयी थी। इधर प्रतिपल मेरे हाथ अवश होते जा रहे थे। रह रह कर मन कह रहा था, अच्छा नहीं हुआ वहीं ठहर जाना था, बसें थीं और गाड़ियां थीं, इतना खतरा मोल लेना ठीक नहीं हुआ, लेकिन अब क्या हो सकता था। बोझ वैसा ही बना रहा, हाथ उसी तरह अवश होते गये। सहारा बेसहारे के समान ही था। श्रीकान्त गुनगुना रहा था, 'राम राघव. राम राघव. राम राघव रक्ष माम्।' मैं ने भी कहा, 'रक्ष माम्।' अचानक मुझे लगा कि हाथों में पसीना आ रहा है, हाथ फिसल रहे हैं, छड़ छूट रहे हैं, गाड़ी तो चली ही जा रही है, रुकेगी नहीं, रोकी भी नहीं जा सकेगी। और अधिक देर तो इस अवस्था में मैं टिक भी नहीं सकूंगा। यदि हाथ छूट गये तो क्या होगा ? मुझे कंपकंपी आ गयी। श्रीकान्त फिर गुनगुनाया, 'कृष्ण केशव पाहि माम्।' भगवान चैतन्य महाप्रभु द्वारा यात्राओं के समय गाया जानेवाला रक्षामंत्र। मैंने आर्त भाव से दुहराया 'पाहि माम्।' किन्तु बोझ तो असह्य हो चला है, मैंने पूरा जोर लगाया, भरी हुई बाहों को और कड़ा करने की चेष्टा की, फिसलती हुई उंगलियों से छड़ों

को और कस कर पकड़ना चाहा किन्तु सब बेकार......एक झटका लगा और मेरे हाथ छूट गये...... ।

एक क्षण के लिए लगा जैसे सारी पृथ्वी उलट गयी हो, लगा जैसे आसमान चक्कर खा कर फट पड़ा हो । दूसरे ही क्षण धरती के कड़े और निर्मम स्पर्श ने मुझे बताया कि सभी चीजें पूर्ववत हैं, केवल मैं ही चलती रेल से गिर पड़ा हूं और लुढ़कनियां खा रहा हूं । मैंने तुरन्त खड़े होने की चेष्टा की और सफल भी हुआ किन्तु फिर बैठ गया । तब तक कुछ दयावान सज्जन दौड़े आये, मुझे उठाया, सड़क तक ले गये, हवा करने लगे । मैं दो चार क्षणों में ही प्रकृतिस्थ हो गया । मुंह पर हाथ फेरा तो मालूम हुआ कि चश्मा गायब है । उधर सामने गाड़ी चली जा रही थी, आदमी उसी तरह लटके हुए थे, मुझे श्रीकान्त के लिए चिन्ता होने लगी किन्तु भगवान की दया से वह पहुँच गया ।

और मैं क्या ? आप विश्वास करेंगे कि चलती रेल से कंकरीली जमीन पर गिरने वाला आदमी अपने टूटे चश्मे को काम चलाऊ ढंग से जोड़ने की चेष्टा करता हुआ एक मील पैदल चलकर कांग्रेस नगर पहुँचा था, बायें हाथ में कुछ खरौंचें जरूर आयी थीं बस । जैसे अनन्त बाहुओं वाले ने करुणा और ममता से परिपूर्ण अपनी बाहुओं में ही उसे समेट लिया हो ।

⁂

हे पुजारी !

जहां एकांत प्राणों का देवता जाग्रत है उस दिव्य मन्दिर के द्वार खोल दे !
देव के स्तवन में गाये जानेवाले मेरी सान्ध्य आरती के गान अभी अपूर्ण हैं,
अपनी जीवन-ज्योति से मेरे इस मदिर मृण्मय दीपक को आलोकित कर दे !
मैं आज एकांत में पूजा का दिव्य नैवेद्य तुम्हारे वरदान के लिए सजाऊँगा—
और जहां विश्व के शत-शत साधकों ने अर्चना की अनन्त दीपमालाएँ जलायी
हैं, वहीं मैं भी अपना यह अकेला अकिंचन दीप जलाऊँगा !

हे ज्योतिवाह, तुम्हारी अनन्त करुणा का एक बिन्दु भी मेरे दीप को चिरन्तन आलोक देने के लिए यथेष्ट होगा !

—'गीतांजलि' में रवीन्द्र

कश्मीर के वसंतोत्सव

सरिता

जाड़ों में कश्मीर-घाटी बर्फ का लिहाफ ओढ़ कर सो जाती है। मगर फाल्गुन जब आता है और मुट्ठी में नई दूब और ओठों पर गान लाता है —

जागो सखि, जागो
वसत आ गया
जागो !

तो नव-वसंत के आगमन की उस अंगूरी-बेला में घाटी अंगड़ाई ले जाग ही उठती है। 'यम्बरज़ल' (नरगिस) की गन्ध से भरी हवाएं हर घर का द्वार खटखटाती हैं। नई पीली धूप हर घर के आंगन में, हर जन की आंखों में, मन में उतर आती है।

हाड़ों को भेदने वाली जाड़ों की हवा का ज़ोर अभी पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुआ होता, मिट्टी की चेतना को ढक देने वाली हिम की परतें अभी सब की सब पिघली नहीं होतीं, फिर भी एक एहसास, एक आशा हृदयों को स्पन्दित कर देती है कि वसंत आ रहा है। ''वन्द चलि, शीन गलि, वेयी इय़ बहार, (शिशिर चला जाएगा, हिम पिघलेगा, बहार फिर आएगी) कवि महजूर का यह विश्वास-वचन अंधेरे कोनों में गूंज-गूंज उठता है। आने वाली बहार का स्वागत् सबसे पहले बच्चे करते हैं। शिवरात्रि के बाद आने वाला 'तील् आठम' (तिल अष्टमी) का त्योहार मूलत: बच्चों का ही आनन्दोत्सव है। इस विचित्र त्योहार में बहार का स्वागत् विचित्र ढंग से किया जाता है। रात को घर-भर की पुरानी कांगड़ियों में आग लगा दी जाती है और उनकी खोल में डोर बांध कर बच्चे उन्हें घुमाते हुए नाचते हैं। यह जाड़ों को विदा है। अब तक जिस कांगड़ी को सहेज कर

रखा जाता था, जिसके बिना पल भर रहना भी कठिन हो उठता था, जिसकी आग को बूढ़े अन्न से भी अधिक मानते थे उसी की किलकते हुए बच्चों की टोली यह दुर्दशा कर डालती है । मगर जो जाड़ा महीनों ज़िन्दगी को अपाहिज सी बनने पर मजबूर कर देता है, उसके अंत पर उसकी प्रतीक कांगड़ी को अग्नि समर्पित कर लोगों का उल्लासित हो उठना स्वाभाविक ही है । उल्लास बच्चों की आंखों में चमक उठता है, वे गाते हैं--

जतूं तूं
जत गव वेरि
कल किन क्रेरि ।

अर्थात्,-जाड़ा लुढ़क गया।
वह सिर के बल कुएं में जा गिरा !

बच्चों की इस क्रीड़ा को बड़े दिलचस्पी से निहारते हैं और जरूरत पड़ने पर उनकी सहायता भी करते हैं । यह त्योहार यद्यपि केवल कश्मीरी पण्डित परिवारों में मनाया जाता है । किन्तु इसमें अंतर्हित भावना हर कश्मीरी के हृदय को परसती है ।

मार्च के दिन । सोने की धूप जिन्दगी बरसाती है । जिन्दगी-जो मिट्टी की रग-रग में हरियाली बन कर सुगबुगा उठती है । तन्द्रिल वनस्पतियों का जागरण ! हर डाल सुहागिन हो जाती है, हर दिशा गन्धवती । फूलों की शतरंगी हंसी । ठौर-ठौर बौरों की महक । सबसे पहले बदाम के वृक्षों में असंख्य हल्के गुलाबी शिगूफों से बदामों की डालियां झुक-झुक जाती हैं । अजीब सा मौसम-बेचैन कर देने वाला । ऐसे में कौन किवाड़ बन्द करके घर में बैठा रहे, नववसंत का आना जान कर भी ! बदामों के बौर कश्मीरियों के मनों को बौरा देते हैं । वे फूलों का उत्सव मनाते हैं--बदामों के फूलों का उत्सव । श्रीनगर से थोड़ी दूर एक छोटी सी पहाड़ी है : हारी पर्वत । उसके ढाल और दामन में बदामों के वृक्ष लगे हैं ।

उनमें शिगूफे खिलते ही वहां वसंत का त्योहार मनाया जाता है जो तब तक चलता है जब नक आखिरी बौ न झर जाये । गृहस्थी की बेशुमार चिन्ताएं, गरीबी की मजबूरियां और परेशानियां, सभी जैसे जिन्दगी से पहली बार हार जाती हैं, वैसे ही पिघल जाती हैं जैसे कुछ काल पहले का हिम । यह लोकोत्सव ऐसा नहीं कि केवल धनवान भोग सकें । यह धरती पर है, धरती के बेटों का है । 'बादामवारी' में कश्मीर के कोने-कोने से लोग एकत्रित होते हैं । फूली डालों के नीचे कश्मीर का जन-जीवन हिलोरें लेता है । समावारों में उबल रही शीर चाय (नमकीन चाय) या कहवे के गिर्द दरी पर बैठा परिवार : चूड़ीदार पायजामा, कोट, पगड़ी और तिलक --यह कश्मीरीं पंडित परिवार का मुखिया है, फयरन, 'पूज़'-तरंगा (शिर पर धारण करने के वस्त्र)

डिजहरू (कर्णाभूषण जिसे सुहागचिन्ह माना जाता है) उसकी पत्नी, कोट-पैण्ट-शर्ट या कमीज-पायजामा—उसका लड़का, शिलवार-कुर्ता, चुनरी, उसकी लड़की, साड़ी, बिन्दि-या, अनेक प्रकार के आभूषण--उसकी बहू। या फिर मुसलमानी ढंग की टोपी फयरन, पूच किसाबा (सिर पर धारण किए जाने वाला वस्त्र), चान्दी के भारी आभूषण—उस की पत्नि, कोट-पैण्ट या शिलवार-कमीज उसका लड़का, पूच, फ्यरन-शिलवार या शिलवार-कुरता उसकी लड़की। धर्म, जाति साम्प्रदाय-किसी का कोई भेद नहीं। पहनावा भी एक सा और पकवान भी--भुने हुए सिंघाड़े या नदरू के पकौड़े। फूल, युवतियां, बच्चे, रंग-बिरंगे वस्त्र, गुब्बारे, खिलौने--रंगों की अनेक लहरें बादामवारी की वाटिका में उमड़ कर आती हैं और जाड़ों की जड़ता को धो जाती हैं। आनंद का ज्वार, ज्वार पर ज्वार जीवन !

कश्मीरियों के अनेक धार्मिक त्योहार भी वसंत के साथ संवद्ध हैं। मूलत: वे हैं ही वसंत के त्योहार। एक ऐसा ही त्योहार है, जंग-त्रय-जिसे कश्मीरी पंडित परिवार मनाते हैं। त्योहार यह केवल स्त्रियों का है। पुरुषों का इसमें कोई दखल नहीं। रात-दिन चूल्हे के धुआं-घुटे वातावरण में जीने वाली औरतें इस दिन मुक्त गगन के नीचे खुली प्रकृति में स्वच्छंद सांस लेती हैं। यह उनका अपना दिन है-साल के ३६५ दिनों में से एक पूरी आजादी का दिन जब वे गृहस्थी की अनगिनत जिम्मेदारियों से कुछ समय के लिये फुरसत निकाल ही लेती हैं। यह विवाहिताएं इस अवसर पर मैके चली जाती हैं। फिर घर-भर की स्त्रियां नहा-धो सजधज कर मनचाहे उद्यानों में विहार करती हैं—फूलों में फ़ूल। रंग-बिरंगे परिधानों में तरुणियां, प्रौढ़ाएं, वृद्धाएं वसंत का अभिनंदन करती हैं। विवाहिता को अपने मैके से नई साड़ी (पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों को फ्यरन) मिलती है और साथ ही मिलता है अतगथ--अर्थात मैके आने जाने के अवसर पर दिया जाने वाला खर्चा। शाम को फिर वही जीवन, वही चूल्हा, वही मचलते बच्चे, वही गृहस्थी का बोझा।

'सोंथ' और 'नवरेह' भी कश्मीरी पंडितों के त्योहार हैं जो वसंत के उपलक्ष्य में मनाए जाते हैं। सोंथ का अर्थ ही है वसंत-कश्मीर की चार ऋतुओं सोंथ, रेतकोल, हरूद, वन्द् (वसंत, ग्रीष्म, शरद, शिशिर) में सब से प्रथम और मनोहारी। पीला महकता बेदमुश्क, नीले योस्मन, हल्के गुलाबी बदामों के शिगूफे रंगों की लय पर आत्मा नाच उठती है। व्यक्ति की आंखों पर अनायास मोरपंखी स्वप्न तैर जाते हैं। परिवार भर की कल्याण कामना मन में सजोंये सोंथ के अवसर पर कश्मीरी गृहणियां रात को एक थाल में सजा कर रखती हैं --चावलों से (कि वर्ष भर अन्न का अभाव न हो) अखरोटों और बदामों से (कि जिन्दगी फलहीन न हो जाए), फूलों से (कि जीवन में वसंत छाया रहे) दर्पण से (कि उसमें सुखी भविष्य की छाया बिम्बित

हो), कागज से, कलम से और दवात से (कि सरस्वती की कृपा बनी रहे) एक रुपये से (कि लक्ष्मी न रूठे) नबात (मिश्री) की डली से (कि तल्खियों के बावजूद जिन्दगी में वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक सम्बन्धों में मिठास बनी रहे)। प्रातः अभी पहली किरण जागी नहीं होती कि गृहिणियां परिवार के हर सदस्य को यह भरा थाल दिखाती हैं। सभी थोड़ा सा दही, अखरोट-बादामों की कुछ गिरियां और नबात की छोटी सी डली चख लेते हैं और दर्पण में अपना मुंह देखते हैं।

नवरेह का अर्थ है नया वर्ष। यह मात्र संयोग नहीं है कि कश्मीरियों का नया वर्ष वसंत के साथ ही शुरू होता है। इस अवसर पर भी वैसे ही थाल सजाया जाता है जैसे सोंथ पर, केवल एक चीज अतिरिक्त रखी जाती है उसमें। वह है नये साल की जन्तरी-भाग्य जीवियों का विचित्र संबल।

'नवरोज़' मुसलमानों का नया वर्ष है जो कि नवरेह से कुछ काल पूर्व या पश्चात् मनाया जाता है। बड़ी धूम रहती है इस त्योहार के दिन मुसलमान परिवारों में। नए कपड़े, मेले-ठेले, उद्यानों में भीड़, गली गली चहल पहल, मानों खुशी का दरिया छल-छल करके बह निकला हो।

आषाढ़ का पहला दिन कालीदास की कविता में अमर हो गया। बैसाख के पहले दिन पर किसी कश्मीरी कवि ने काव्य नहीं रचा, किन्तु इस दिन कश्मीरी कविता पीते हैं। बहार अपने यौवन पर होती है। झेलम के जल में अबाबीलें पंख डुबो-डुबो कर उड़ती हैं। पोशिनूल (गोल्डन ओरियल) का स्वर सघन द्रुमालियों से झरता है। टहनी टहनी पर, घर-आंगन में बुलबुलों की चहक। वन-पंखियों के मधुरव का वन-कान्तारों में फैलना, फैलते ही जाना। फूल गुच्छ-गुच्छ फूल। बदामों के शिगूफे झर चुके होते हैं, किन्तु चेरी, खुबानी, नाशपाती, आड़ू सबकी डालियां पुष्पवती हो जाती हैं। आड़ू के चटख लाल रंग के फूल मन में लाल ज्वाला सुलगा देते हैं जिसमें जल जाती है कुण्ठाओं की ढ़ेरी। कश्मीरी कवि प्रेयसि के वदन की उपमा इन फूलों से देते हैं। रोज़मर्रा के दृश्यों से थकी-ऊबी आखें मीठी हरियाली पी लेती हैं। जिस ओर भी नज़र जाए फूल पत्ती, पत्ती फूल--कि सहज ही यह अनुभव रोमाँचित कर देता है--

छन्द हैं ये फूल पत्ती प्रास।

बैसाखी का त्योहार भारत के अन्य कई प्रान्तों में भी मनाया जाता है, विशेषकर पंजाब में जहां पक्के गेहूं की बालियों को देख उल्लासित पंजाबी भांगड़ा और गिद्दा नाचते हैं। किन्तु कश्मीर में यह त्योहार वासंती-सुषमा के अभिनन्दन का रूप धारण कर लेता है। कश्मीरियों के लिए यह जीवन का उत्सव है। जाड़ों में बन्द पड़े मुगल बागों के द्वार

इस दिन खुल जाते हैं, फव्वारे छूटते हैं, मेले लगते हैं। निशात, शालीमार चश्माशाही सभी जगह कश्मीर का जन जन उमड़ पड़ता है। इन मुगल बागों में एकत्र हुए जन समूह में बहुत से सैलानी भी दिखाई पड़ते हैं। डल झील का सोया जल चप्पुओं की 'चलछप् चलछप्' से जाग उठता है। सजे 'शिकारों' (बजरों) की कतारें हंसों—सी झील पर तैरती हैं। सुख की दुर्लभ अनुभूति से जन- समूह सिहर उठता है। सांझ बीते मांझियों के गीतों की टुकड़ियां वातावरण में बजती रहती हैं।

बाग़े-निशात के गुलों,
नाज़ करान करान वलो ,
.. ओ बाग़े-निशात की गुल-मेरी महबूबा।
तू नाज़ करती हुई पास आ...आ ऽ आ ऽ।

बैसाखी के इस मेले में नगर-गांव के नर-नारी सभी भाग लेते हैं। गांव वालों के भी अपने अलग वसंतोत्सव होते हैं। एक ऐसा उत्सव होता है अच्छाबल के लुभाने उद्यान में, जहां वसंतोल्लास नृत्य का रूप धारण कर लेता है। इस अवसर पर लोक विदूषक 'भाण्ड' ......जो गायक भी हैं, नर्तक भी हैं और मसखरे भी......अपनी अनेक प्रकार की हास्य-चेष्टाओं से उद्यानों में एकत्रित लोगों को हंसाते हैं। कितनी निर्मल हंसी होती है वह। ढिम्-ढिमे्-ढिम् अनेक ढोल बज उठते हैं और पुलकित जिन्दगी नाच उठती है। ऐशुमकाम में मनाए जाने वाले उत्सव में रात को जलती मशालों का एक लम्बा जुलूस निकाला जाता है-नवजीवन की, नव आशा की मशालें !

और एक दिन हम पाते हैं कि वसंत चुपके से इस सोन-घाटी से चला गया है। मगर वह फिर आयेगा, फिर जरूर आएगा। यह विश्वास मन से नहीं जाता। वसंत कश्मीरियों के लिए नव-जीवन का प्रतीक है। 'रेत कोल' (ग्रीष्म) सेलानियों को लाता है, रौनक को लाता है, मगर वंसत के जाने से न जाने ऐसा क्या खो जाता है कि जिसे हम वर्ष के शेष महीनों में ढूंढ ढूंढ कर भी नहीं पाते। बस माली से फिर-फिर यही अनुरोध करते हैं **'हया हो बाग़बानों नव बहारक शान पैदा कर** (महजूरर) बाग़बान रे, नव बहार की शान करो पैदा।

* *

अयूब 'प्रेमी'

ऐसा लगता है

दिमाग़ पर किसी मकड़ी ने जाला नहीं बुना है,
हां, उस पर फफूंदी ज़रूर लग गई है।
मेरे चारों तरफ कोई नदीदी कुतिया
सूँघ सूँघ कर भद्दी सी जम्हाई लेकर चली गई है।
इच्छाएं ऐसी मालूम होती हैं जैसे
मुर्गी की दुम से झड़े हुए पर हवा में उड़ रहे हों।
और हम खुशी से दीवाना होकर हुमक हुमक कर
लपकने लगते हैं, मगर हाथ कुछ नहीं लगता।
फिर खोखले कहकहे लगाते हुए
अपने आसन से चिपक जाते हैं।
एक बार वे हमसे इस तरह जरूर मिले जैसे
गिरते हुए मकान की मरम्मत की हो।
पुरानी बातें न दुहराने की कसम खाई थी
दिल पर सब्र की सिल रखी थी
पर बीच-बीच में कनपटी की नस फड़की
तो तेजी से दर्द महसूस हुआ।
लेकिन आज तो किसी ख्याल ने
ताऊन की तरह दिमाग़ को जकड़ लिया है
ऐसा लगता है······कि·········
फिर कभी ऐसा लगेगा ही नहीं।

* *

उर्दू कहानी

मज़ाक़

तेज बहादुर भान

रज्जाक पेड़ के तने के साथ पीठ लगाए, टांगें पसारे बैठा था। उठक-बैठक ने उसके अंग-अंग को ढीला कर दिया था। उसे महसूस हो रहा था, जैसे कमर की जगह एक दर्द की लकीर हो। उसका जी चाह रहा था कि यूंही पेड़ से पीठ लगाए पड़ा रहे—सामने कुछ गज़ की दूरी पर तारकोल की सड़क उछलती कूदती नदी में बदल जाए, और सूरज की सारी तपिश को अपने साथ बहा ले जाए। अब उससे इस तेज धूप में खड़ा नहीं रहा जाता था। सुबह से लगभग चालीस मोटरें धूल के बादल उड़ातीं पहलगाम की ओर गुम हो गई थीं, और हर मोटर के आने पर उसे उठना पड़ता था। उठकर सड़क के एक तरफ इकट्ठे किए हुए मट्टी के ढेर में खुबे हुए वेलचे को थामना पड़ता था। कमर को दुहरा करके शरीर और बेलचे को इस प्रकार झुकाना पड़ता था, जैसे वह सचमुच वेलचे से मट्टी उठाने की कोशिश कर रहा हो, सड़क के किनारों पर मोटरों-लारियों की आवाज ही से जो खड्डे पड़ जाते थे, उन्हें भरना ही उसका काम था। शायद अठारहवां साल था नौकरी का, उसे याद न था, लेकिन छः रुपए मासिक से पच्चीस रुपये मासिक तक लम्बे सफर ने उसकी कमर को झुका दिया था—एक हट्टे-कट्टे शरीर को खोखला कर दिया था। अजीब तराज़ू थी उसकी ज़िन्दगी भी, एक पलड़ा झुकता जाता था, और दूसरा अपनी जगह से हिलने का नाम न लेता था। अठारह साल पहले घर की जैसी हालत थी, अब भी वैसी ही थी। शायद यही कारण था कि अब उसने काम करना बिल्कुल छोड़ दिया था। केवल दूर से किसी गाड़ी को आते देख वह अपनी कमर को पेड़ के तने से अलग करता था, उठकर मट्टी के ढेर के पास पहुंच कर बेलचे को यों थामता कि देखने वाले को लगे कुली काम कर रहा है। क्योंकि दिखने वालों में उसका कोई आफिसर हो सकता है। ज्योंही गाड़ी पास आती वह एक सलाम भी दाग देता, ताकि गाड़ी में बैठा आफिसर

खुश हो जाए। गाड़ी अगले मोड़ में गुम हो जाती तो वह भद्दी सी गाली बड़बड़ाते हुए बेलचे को फिर से मट्टी के ढेर में गाड़ देता, और पेड़ के तने से जा टेक लगा लेता।

कई बार उसके जी में आता कि अब वह किसी गाड़ी के आने पर खड़ा न होगा, और न ही किसी को सलाम गुजारेगा। जवानी में अपनी उमगों और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसने बहुतेरे सलाम गुजारे थे, जी तोड़कर काम भी किया था, और अब जबकि शरीर के साथ उसकी प्यासी उमंगें और आकांक्षाएं भी मरने लगी थीं तो उसे सलाम गुज़ारने की कोई आवश्यकता नहीं थी—पर वह ऐसा न कर सका। उमंगें चाहे मर जायें, भूख तो नहीं मरती। और कुछ दिनों से उसकी भूख इतनी बढ़ गयी थी कि पगार के पच्चीस रुपयों ने फाकों को घटाने के बजाए बढ़ा दिया था। बुढ़ापे में दो बच्चियों का बाप बन जाने से दोनों टांगों में लड़खड़ाहट भी पैदा हो गई थी। बच्चियों के भविष्य के बारे में सोचते हुए उसकी आंखें भी छलछला आती थीं। शायद इसी कारण या फिर दिन भर धूप में रहने से उसकी आंखें भी खराब हो गयी थीं। गांव का पन्सारी जो गांव का हकीम भी था, अब तक फैसला न कर पाता था कि आंखें खराब होने का सही कारण क्या है। उसकी सारी दवाइयां बेकार हो चुकी थीं।

उसने जल्दी से फटे कुर्ते से आंसू पोंछे और खड़े होकर बेलचे की तरफ बढ़ा। दूर से नीले रंग की एक मोटर आ रही थी। शायद बड़ा साहब हो—ओवरसियर ने मोटर का रंग नीला नीला बताया था—या शायद काला बताया था—बुढ़ापे ने उसके दिमाग को भी निकम्मा कर दिया था। मोटर पास आ रही थी, इसलिए उसने मोटर की तरफ अपनी पीठ करली, और बेलचे पर झुक पड़ा। मोटर का हार्न जोर से चीखा तो चौंकने का अभिनय करते हुए उसने गर्दन फेरकर मोटर की ओर देख लिया। दायां हाथ बेलचे से जुदा होकर माथे से टकरा गया। सहसा उसके दिल की धड़कन तेज हो गयी। मोटर की गति धीमी हो रही थी, और उसके पास आकर मोटर रुक गयी। मोटर के अगले भाग में एक मर्द और औरत बैठे थे। औरत बहुत गोरी थी, और आदमी बहुत काला। पीछे एक नौकर चार पांच साल के बच्चे को सम्भाले बैठा था। बच्चे के बाल भूरे थे। वह खिड़की में से सिर निकालकर रज्जाक को अपनी मोटी-मोटी मासूम आंखों से ताक रहा था।

बच्चे को देखते ही, उसे चिढ़ाने के लिए उसके होंठ फड़फड़ाने लगे। लेकिन दूसरे क्षण अपने मरे हुए बच्चे की याद आते ही वह रुक गया उसकी आंखें धुंधला गयीं।

काले आदमी ने गोरी औरत से कुछ कहा और फिर रज्जाक को हाथ के इशारे से पास बुलाया। वह बेलचा फेंककर आगे बढ़ा। शायद कोई नया साहब हो—आये दिन साहब बदलते रहते हैं। वह दोनों हाथ जोड़कर खिड़की के पास खड़ा हो गया। साहब ने रोबीली आवाज में पूछा, "तुम कौन हो ?"

"सड़क का कुली हूं हुजूर।" कहते हुए उसने एक और सलाम दाग दिया।

"यह काम हो रहा है ? सड़क की हालत तो देखो, बिलकुल खराब हालत में है। काम चोर।" साहब ने आंखें निकाल कर डांटा।

"हुजूर, अठारह साल हो गये यह काम करते—हुजूर गरीब आदमी हूं......" वह गिड़गिड़ाने लगा।

"गरीब आदमी......हूं ......पानी यहां है कहीं ? मोटर गर्म है।" साहब ने हुक्म दिया।

नौकर ने उसे एक खाली टिन का डिब्बा पकड़ा दिया। पास ही एक छोटा नाला बहता था। वह दौड़ा दौड़ा गया। जितनी जल्दी साहब चला जाए, उतनी ही जल्दी उसकी मुसीबत टल जाएगी। वापस आते हुए उसे बेहद थकन महसूस हुई। डिब्बा पानी से भरकर काफी भारी हो गया था। सौभाग्य था कि एक ही पानी के डिब्बे से मोटर की आग बुझ गई, वरना दूसरा डिब्बा भर कर लाने की शक्ति उसमें नहीं रह गयी थी।

साहब और उसकी पत्नी को फल खाते देख उसके मुंह में पानी भर आया। दिन के दो बज गए थे शायद। साहब जाये तो वह भी घर लौटकर चाय पी ले। वहीं टांगें पसार कर सो जाए। इतने दिन साहब का इन्तजार करते-करते उसकी जान हलकान हो गयी थी।

फल खाकर साहब ने उसे एक बार और डांटा। वह पत्थर की मूर्ति की तरह हाथ जोड़े मौन खड़ा रहा। डांट का उस पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। जबसे उसने होश सम्भाला था डांट खाता आया था। गालियों का आदी हो चुका था वह। अब तो उसे अपना आप भी एक चलती फिरती गाली ही महसूस होता था।

साहब ने मोटर स्टार्ट की तो उसकी जान में जान आई। साहब ने उसकी ओर आखिरी बार घूरा। रज्जाक का हाथ जल्दी से माथे पर बढ़ा, जैसे साहब की गुसीली नजरों को रोकने के लिए सलाम ही ढाल थी।

"तुम आज पहलगाम बंगले पर आना, तुमसे पूछताछ करनी है।"

'साहब के शब्दों ने जैसे उसकी चेतना छीन ली है। वह कहना चाहता था कि साहब वह बहुत गरीब आदमी है—उसकी एक पत्नी—दो छोटी बच्चियां हैं—वह सुबह से सड़क पर काम कर रहा है, और अब उसमें पहलगाम तक चढ़ाई के ये पांच मील चलने की शक्ति नहीं है। लेकिन मोटर धक्के से आगे बढ़ी। धूल के बादलों ने रज्जाक को घेर लिया। उसकी आंखों में पानी आ गया। अनायास उसकी नज़रें आसमान की ओर उठीं, पर उसे जल्दी ही आंखें फेर लेनी पड़ी, आसमान से आग बरस रही थी।

वह पहलगाम पहुंच गया। शाम हो रही थी। पहलगाम में काफी चहल-पहल थी। सैलानियों के जोड़े चहलकदमी कर रहे थे। ठण्डी हवा चल रही थी, और देवदार के ऊंचे-सीधे वृक्षों में फुस-फुसाहट हो रही थी। लेकिन रज्जाक का बदन पसीने में सरावोर था। टांगें जवाब दे रही थीं। बाजार की आखिरी चढ़ाई ने रही सही कसर भी निकाल दी। उसके सिर पर कुलियों की विशेष लाल पगड़ी यों लग रही थी जैसे कोई जलता तवा सिर पर धरा हो। एक दुकान पर कुछ आदमी हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उसने सोचा क्यों न दुकान पर कुछ पल दम ले ले और हुक्का पी ले—जो होना है सो तो होकर ही रहेगा—दो चार पलों से अन्तर तो नहीं पड़ने का—बेकार अपनी जान हलकान करने से फायदा? सहसा उसकी नजरें दुकान से जरा आगे खड़ी मोटर पर पड़ीं, कोई आदमी मोटर की सफाई कर रहा था, साहब का नौकर सा लगा उसे। मोटर का रंग भी नीला था। वह हुक्के की तलब भूल गया। डर और परेशानी जो कुछ देर पहले शारीरिक थकान के नीचे दब गयी थी, फिर उभर आई, और उसके कदम आप ही दुकान के बजाये मोटर की ओर बढ़ गये।

"साहब कहां है?"

नौकर चौंककर मुड़ा और मुड़ा ही रहा।

रज्जाक की व्याकुलता बढ़ गई। खुदा खैर करे—नौकर जवाब देने के बजाय उसे यों घूर रहा था, जैसे वह सड़क का कुली अब्दुल रज्जाक न हो, कोई दीवाना सौदाई हो।

"भई, मैंने पूछा साहब कहां हैं? घर किसी से कहे बिना आ गया हूं—देर हो जायेगी तो बच्चे घबरा जाएंगे।"

एकाएक नौकर जवाब देने के बजाय खिलखिला कर हंस पड़ा।

रज्जाक घबरा गया।

"तो तुम आ गए ?" नौकर ने हंसते हुए कहा, "अरे भई, वह तुम्हारे साहब नहीं ····वह तो·····वह तो······भोपाल का एक बड़ा ठेकेदार है—तुम्हारे कश्मीर की सैर को आ गया है" हंसी के मारे नौकर के मुंह से शब्द भी ठीक से न निकल रहे थे।

"वह हमारे साहब नहीं ?" रज्जाक की आंखें फटने लगी थीं।

"नहीं—वह तुम्हारे साहब नहीं। बाद में साहब ने मेम साहब से कहा था ये सड़क के कुली सब काम चोर होते हैं। बिलकुल काम नहीं करते, सिर्फ सलाम करते हैं। इसीलिए मोटर रोककर साहब ने तुम्हें डरा दिया !"

"यूं ही डरा दिया ?" रज्जाक के मुंह से अनायास निकल गया।

"हां भई हां······मेम साहब सुनेगी कि तुम यहां भी आए थे तो हंसी के मारे वह··· "

"ओह······" रज्जाक के मुंह से निकल गया। नौकर ने शायद उसके चेहरे पर दुःख दर्द की रेखाएं उभरती देखीं, उसने बात पूरी नहीं की, हंसी को रोककर जेब से बीड़ी का एक बण्डल निकाला, और एक बीड़ी रज्जाक की ओर बढ़ाई।

"लो बीड़ी पी लो—साहब ने तो सिर्फ मज़ाक किया था—लो भई ··"

"वह हुक्के का आदी था। बीड़ी उसके लिए नयी चीज थी। क्षण भर के लिए बीड़ी ने उसका ध्यान हटा दिया।

उसने घर की तरफ कदम बढ़ाए तो सूरज डूब चुका था। हवा बहुत ठण्डी हो गयी थी। वह रात गए घर पहुंचेगा—शायद पत्नी उसके देर से आने पर लड़ने भी लगे—लेकिन वह उससे झगड़ नहीं सकेगा। उसमें दम ही कहां रहा है झगड़ने के लिए। वह तो शुक्र था अल्लाह का कि घर की ओर ढलान थी, नहीं तो घर पहुंचना मुमकिन नहीं था। वैसे थकान ने उसकी टांगों को यों जड़ कर दिया था कि उसे ज्यादा तकलीफ न हो रही थी। पांव बेजान मशीन के समान घिसटते चले जा रहे थे। काश ! उसका दिमाग भी एक बेजान मशीन बन जाए। तब उसे इतनी खिन्नता न होती। ठेकेदार के मज़ाक ने उसके विचारों में खलबली मचा दी थी।

यह ठीक था कि उसके साथ अनगिनत मज़ाक हुए थे। तनखाह बढ़ाने के वायदे मज़ाक बने थे—घर-गिरस्ती को ढंग से चलाने की योजनाएं—पत्नी के लिए गहने कपड़ों की इच्छा—बच्चियों के लिए खेल खिलौनों के सपने—वह कहां तक गिनती करे और भी बहुत से मज़ाक हुए थे उसकी जिन्दगी के साथ। जिन्दगी खुद

एक घिनौना मज़ाक बनकर रह गई थी। लेकिन फिर भी उसे जिन्दगी से गिला न था। वह अकेला ही इस मजाक का शिकार न था। इसीलिए उसने कभी शिकायत नहीं की थी। लेकिन आज का मजाक तो बिल्कुल अनोखा था। उसे लग रहा था जैसे यह मज़ाक एक सड़क के कुली से न हुआ हो, बल्कि अब्दुल रज्जाक के भीतरी व्यक्तित्व से हुआ हो—रज्जाक के दुहरे होते हुए शरीर के साथ हुआ हो—उसकी आंखों में उबलती वीरानी के साथ हुआ हो—उसके चेहरे पर फैली दर्द और उदासी की लकीरों के साथ हुआ हो, या शायद उसके खुरदरे सूखे हाथों के साथ हुआ हो, जो सलाम की खातिर माथे की ओर बढ़ा करते थे। वह सलाम न करता तो शायद यह मज़ाक भी न होता उसके साथ। भला सलाम गुजारने की जरूरत ही क्या थी। उसे सलाम गुजारने की पगार मिला करती तो अब तक वह हजारों कमा चुका होता। जिन्दगी तो सलाम गुजारने में ही गुजर गयी थी। सचमुच उसे सलाम गुजारने की जरूरत नहीं—बिलकुल नहीं—नौकरी से निकाल दें तो निकाल दें—उसे कोई परवाह नहीं—उसने फैसला किया।

जब वह घर पहुंचा तो देहलीज पर पत्नी इन्तजार कर रही थी। उसके चेहरे पर गुस्से के लक्षण नहीं थे। उस समय उसे पत्नी बहुत भली लगी। जी चाहा उसे प्यार से बुलाए, और खाना परोसने को कहे। इतने लम्बे सफर ने आंतों को बिलकुल सुखा दिया था।

"कहां रहे इतनी देर?' घर से काम पर जाते हो, और वहां अवारागर्दी करते फिरते हो?" पत्नी की आवाज में क्रोध नहीं था।

"क्या मतलब?" उसने दरवाजे का सहारा लेते हुए पूछा। खड़े रहना कठिन हो रहा था।

"तुम्हारा बड़ा साहब दौरे पर आ गया था। तुम काम पर मौजूद न थे। ओवरसियर ने कहला भेजा है कल से काम पर मत आना—बड़े साहब का हुक्म है।"

"तुम मज़ाक कर रही हो······?" उसने हंसने की कोशिश की। लेकिन उसके हंसने की आवाज पत्नी की हिचकियों में बिलकुल दब गई।

अनु० वेदराही

जलता शहर

टूटे दरवाज़े पर बिखर रही राख,
जलता है सिग्रेट की आग से शहर।

इधर उधर चीख और शोर,
इनसानी दर्द सभी ओर !
दहशत का अन्धा दानव,
लील रहा सभी ओर छोर !

कुत्तों से भाग रहे पागल इन्सान,
हर घर है बना हुआ एक मौतघर।

सभी ओर धुएं के पहाड़,
जलते फुटपाथों के झाड़।
लपटों की लहरें ऊँची,
सड़कों पर खा रहीं पछाड़।

नाच घर थियेटर काफे सब वीरान,
गली गली घूम रही मौत की नजर।

देख रहा हूं मैं लाचार,
अंगारों का यह अम्बार !
जिसके ऊपर है उठता,
एक अट्टहास धुआंधार !

यह है इक्कीसवीं सदी की सौगात,
कम्प्यूटर गिनते हैं मुर्दों के सर।

* *

लद्दाख में कुछ दिन

जुले !

नारायण मिश्र

एक बहुत बड़े आकार के वायुयान में करीब तीस हज़ार फुट की ऊंचाई पर, हम उड़ रहे थे। हमारे नीचे से बड़ी ऊंची हिम-मंडित पर्वत मालाएं गुजर रही थीं। ऐसा लगता था जैसे हम किसी देव लोक की ओर जाते हुए आकाश में बादलों से ऊपर उड़ रहे हैं। इस प्रकार जम्मू-कश्मीर के उत्तर-पूर्वी प्रान्त, लद्दाख की राजधानी, लेह की तरफ जाते हुए मैं सोच रहा कि मानव आत्मा कभी संतुष्ट नहीं हुई है। इन बीहड़ दुर्गम बर्फानी पर्वतों को लांघ कर मनुष्य, कभी धार्मिक उपदेश देने, कभी अहिंसा का पाठ पढ़ाने और फिर कभी वहां की भूमि पर अपनी प्रभुसत्ता का गाड़ने गया होगा।

मुझे रेडियो कश्मीर से प्रसारित होने वाले लद्दाखी प्रोग्रामों का स्मरण हो आया, जिसे मैं अपने कई वर्षों के कश्मीर प्रवास में थोड़ी देर के लिए अवश्य सुनता था। प्रोग्राम के आरम्भ में रोमांचकारी मिठास से भरे स्वर में कहा जाने वाला वह कर्णप्रिय शब्द 'जुले' इस समय पुन: मेरे कान में गूंज रहा था और मैं उत्सुक था उसी शब्द को लेह की धरती पर पहुंच कर वहां के निवासियों के मुख से सुनने के लिए।

मई मास में मैदानों की जलती धूप से निकल कर करीब एक घंटे बाद जब हमारा वायुयान लेह के हवाई अड्डे पर उतरा तो हम एक दम सर्दी से ठिठुरने लगे। गर्म चाय की प्याली भी शरीर में गर्मी न ला सकी। जल्दी से स्वैटर पहना और गले में मफ़लर लपेट लिया। लेह नगर की तीनों दिशाओं में शिलाखंडों से बने मटियाले टीलों

के पीछे चांदी सी श्वेत बर्फानी चोटियां ऊंची होकर झांकती सी लगती हैं। यहां की भूमि समतल नहीं वरन् सिन्धु नदी की ओर ढलवान लिए है। नगर के आस पास पर्याप्त उपजाऊ भूमि है। खेतों में हमने 'गिरम' (एक विशेष अनाज) तथा जौ के अंकुर देखे। समुद्र तल से बारह हजार फुट की ऊंचाई पर बसे लोगों के लिए जीवन का नया संदेश लेकर आने वाले इन नवजान अंकुरों को रेतली धरती से बाहर झांकते देख कर मन में एक सिहरन सी हुई। लद्दाख में मुख्यत: 'जौ' या 'गिरम' की ही काश्त होती है। 'गिरम' गेहूं की तरह का ही एक अनाज है। 'जौ' चौदह हज़ार फुट की ऊंचाई पर भी पैदा हो जाता है। नीचे के इलाकों में लोग गेहूं भी बोते हैं। 'याक' और साधारण गाय के मेल से उत्पन्न एक असाधारण पशु यहां होता है, जिसे 'जो' कहते हैं। इस से हल चलाने का काम लिया जाता है। इस की मादा को 'जोमो' कहते हैं इस का दूध घना होता है और उस में से मक्खन बहुत निकलता है।

लेह में दाखिल होते ही सामने पहाड़ी पर बना पुराने राजाओं का महल नज़र आने लगता है। यह कई मंज़िलों वाला विशाल भवन है। इस की दीवारें अन्दर की ओर झुकी हुई प्रतीत होती हैं। इसी के साथ थोड़ा ऊपर एक बौद्ध मठ है। मठ को यहां की भाषा में 'गुम्पा' कहते हैं। उसके साथ ही थोड़ा ऊपर एक पुराने दुर्ग की बुर्जियां हैं। इन के नीचे पहाड़ी की ढलवान पर लेह नगर बसा है जिसके बीच में एक लम्बा बाजार है। सड़क के दोनों ओर अच्छे ढंग से बने मकानों की कतारें बड़ी सुन्दर लगती हैं। ऐसा जान पड़ा कि यहां मकानों को उजला रखने के लिए सफेदी का प्रयोग खूब किया जाता है। नंगे मटियाले टीलों तथा पर्वतों के इस प्रदेश में साफ तथा दूध जैसे सफेद मकान बहुत भले लगते हैं।

लेह के बाहर सड़क के साथ साथ दोनों ओर बने, लगभग चार पांच फुट ऊंचे और सौ फुट तक लम्बे कई चबूतरे देखे। पहले तो बात समझ में नहीं आई, बाद में उन चबूतरों पर, जो ऊपर से सड़क की ओर ढलवान लिए थे, सैंकड़ों चौड़े पत्थर बिछे हुए देखे। उन पत्थरों पर लद्दाखी लिपि में बौद्ध मंत्र खुदे हुए थे। इन्हें यहां की भाषा में 'माणे' कहते हैं। लेह नगर प्राचीन समय में तिजारती रास्ते पर बसा एक ऐसा केन्द्र था जहां से होकर ल्हासा (तिब्बत) तथा यारकन्द आदि के साथ व्यापार होता था। इस समय भी जिला अधिकारियों के दफतर यहीं पर हैं। लद्दाख प्रान्त का वर्गफल ३७००० वर्ग मील है। यह इलाका क्षेत्रफल में जम्मू काश्मीर के बाकी सारे प्रदेश से भी बड़ा है परन्तु यहां की जनसंख्या बहुत ही कम है। यहां की कुल आबादी केवल ९००० के लगभग है। इनमें बौद्धों की संख्या अधिक है।

यहां जलाने के लिए लकड़ी बड़ी दुर्लभ है। इस लिए हम ने जगह जगह लड़कियों तथा औरतों को अपनी पीठ पर बंधी टोकरियों में गोबर लीद आदि एकत्रित करते देखा। इसी गोबर आदि को जलाकर यहां के लोग अपना भोजन आदि तैयार करते हैं। इन के भोजन मे जौ के सत्तू या दलिया का विशेष स्थान है। यहां मक्खन का प्रयोग खूब किया जाता है। आम लोग तो जोमों, के दूध से निकाला गया मक्खन खाते हैं परन्तु अभिजात वर्ग के लोगों द्वारा प्राय: बाहर से आए मक्खन का प्रयोग होता है। आजकल तो हालात जैसे बिल्कुल ही बदल गये हैं। सड़क के रास्ते लेह के श्रीनगर के साथ जुड़ जाने के कारण आवश्यकता की सभी तरह की वस्तुएं मिल जाती हैं, परन्तु जिन दिनों यहां की यात्रा पैदल चल कर कई सप्ताहों में पूरी होती थी, उन दिनों की दशा के विषय में सुन कर मन को कुछ अजीब सा लगता है। हम ने लद्दाखी चाय के विषय में सुन रखा था परन्तु यहां पर ज्ञात हुआ कि वह चाय कोई विशेष चाय नहीं है। वही चाय यहां पर भी बिकती है जो हमें श्रीनगर में मिलती है परन्तु फर्क केवल इतना है कि उसे यहां तैयार दूसरे ढंग से किया जाता है। इसे यहां 'गुर-गुरी' चाय कहते हैं। हमें यह चाय पीने का अवसर 'स्तोक' नामक गांव में राजा स्तोक के महल में उन के भाई के साथ मिला। इसे मक्खन के साथ मथकर तैयार किया जाता है। आजकल यहां दूसरे अनाज भी खाये जाने लगे हैं, जैसे— चावल, गेहूँ दालें आदि। मांस और सब्जी का भी प्रयोग होता है। उगाई सब्जियां, यहां सब्जियां बेचने की दुकानें नहीं हैं। नगर या उस के आस पास से औरतें अपनी पीठ पर लाद कर ले आती हैं और चौक में बैठ कर बेचती हैं। उस्तहाक् (कश्मीरी साग) शलजम, मूली आलू आदि यहां पर खूब बिकते हैं। शाम को बाजार में बड़ी चहल पहल होती है।

लद्दाख के लोगों का प्रिय पेय है—'छग' इसे हम यदि स्थानीय बियर' कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसे वे लोग स्वयं जौ से बनाते हैं। इस का प्रयोग वहां घर घर में होता रहा है।

डाकबंगले में मैं अपने कमरे में पहुंचा तो वहां छत के मध्य में एक गोल सुराख देखकर कुछ विस्मित हुआ। फिर दूसरे कमरे में जाकर देखा तो वहां भी वैसा ही सुराख था। पूछने पर पता चला कि शीत ऋतु में भीषण सर्दी के कारण बुखारी का प्रयोग होता है, उस के धुएं को बाहर निकालने की नली के लिए यह सुराख रहता है। लद्दाख में वर्षा नहीं के बराबर होती है और इसी लिए पहाड़ों की चोटियों को छोड़कर नीचे बर्फ नहीं गिरती। यही कारण है कि वहां के लोगों को वर्षा से बचाव करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

लेह में, तथा उसके आस पास जहां कहीं भी हम लोग गए, प्राय: सभी गांवों के पास, किसी पहाड़ी की टेकरी पर–'गुम्पा' बने हुए देखे। इनकी बाह्य आकृति, सभी स्थानों पर लगभग एक सी थी। छोटे छोटे मठों में एक दो लामा ही रहते हैं परन्तु बड़े गुम्पाओं में लामाओं की संख्या सैकड़ों तक होती है। प्राय: प्रत्येक बौद्ध घर से एक लड़का गुम्पा में लामा बनने के लिए भेज दिया जाता है। गुम्पा में पढ़ लिख कर बौद्ध भिक्षु लड़का 'लामा' कहलाने लगता है और लड़की 'चोमोस' पहले लामाओं को उच्च धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए ल्हासा भेजा जाता था। 'गुम्पा' प्राय: गांव से एक ओर हट कर किसी ऊंचे स्थान पर बने होते हैं। इन में, एक ऊंची छत का सुन्दर चौकोर बड़ा कमरा होता है। बीच में लकड़ी के खम्बे छत को सहारा दिए रहते हैं। दीवारों पर प्राय: धार्मिक चित्र बने रहते हैं। सामने एक मंच पर महात्मा बुद्ध की, जिन्हें यहां की भाषा में 'शाक्य शुब्बा' कहते हैं, एक भव्य मूर्ति तथा उन के आस पास दूसरी उपास्य मूर्तियां रहती हैं। मूर्तियों के आगे पूजा अर्चना की कई वस्तुएं अत्यन्त सुन्दर ढंग से सजी रहती हैं जैसे– घंटियां, दीपकों की पंक्ति, मुकुट और दूसरे उपकरण। घी के दीपक में बत्ती निरन्तर जलती रहती है। उत्सवों के अवसर पर तथा दूसरे निश्चित दिनों में वहां पर लामा एकत्र होकर उपासना करते हैं।

लद्दाख में बने बहुत से गुम्पाओं में से कुछ मुख्य ये हैं।

(१) हिमिस गुम्पा (२) टिक्से गुम्पा (३) फयाङग गुम्पा (४) पिटक गुम्पा (५) लिकर गुम्पा (६) रेजदङ्ग गुम्पा (७) लामा यूरू गुम्पा (८) शंकर गुम्पा तथा (९) लेह गुम्पा। अन्तिम दो लेह नगर में हैं।

इन में अधिक प्रसिद्ध है 'हिमिस गुम्पा', लेह से लगभग १८ मील की दूरी पर सिन्धु नदी को पार कर तीन ओर से ऊंचे पर्वत शिखरों से घिरा यह गुम्पा बड़ा ही सुन्दर लगता है। यह इस धरती का सब से प्रधान मठ है। एक ऊंचे पहाड़ की चोटी के नीचे यह बना है। मठ के अन्दर जाकर छोटे बड़े कई कमरे हम ने देखे। ऊपर नीचे टेढ़े मेढ़े रास्तों से होते हुए जब हम छत पर पहुंचे तो ऐसा जान पड़ा कि हम पर्वत शिखर के निकट ही हैं। लाल भूरे रंग की पथरीली चट्टानों से बने पहाड़ों की पार्श्वभूमि में, बने इस गुम्पा की शोभा देखते ही बनती हैं। प्रतिमा भवन के सामने की दीवार पर बने हस्त चित्र प्राचीन चित्र कला के सुन्दर नमूने हैं। इस गुम्पा में कई इमारतें हैं। रंग बिरंगी रेशमी झंडियां, स्थान २ पर ऊंचे २ खंभों से लगी हैं। यहीं पास ही सफेदे के वृक्षों का एक बड़ा निकुंज भी देखा। यहां प्रति वर्ष १७, १८ तथा १९ जून को बड़ा भारी मेला लगता है। जिस में दूर २ से बौद्ध भाग

लेते आते हैं। मठ के बाहर उन लोगों के लिए ठहरने के स्थान भी बने हैं। रंग बिरंगी पोशाकें पहने इन लोगों के कारण यह मेला बड़ा मनोहर हो जाता होगा। ऐसी कल्पना ही हम कर सकते थे क्योंकि हमें उत्सव के दिनों से पूर्व ही लौट आना था। इस गुम्पा की बुद्ध प्रतिमा बड़ी ही भव्य है। यहां के प्रधान लामा जोकि लद्दाख के लामाओं में सब से बड़े माने जाते हैं, यहां पर नहीं थे। धार्मिक शिक्षा के लिए वे ल्हासा गये थे, फिर वापिस नहीं लौट सके। हम ने सुना कि इस गुम्पा में बहुत सा धन जमा है। परन्तु गुम्पा के पास ही ग्रामों में चिथड़े पहने लोगों को, विशेषरूप से उन के दरिद्रता ग्रस्त शिशुओं को देख कर बड़ा दुःख हुआ।

लद्दाख में बौद्धों के दो सम्प्रदाय हैं। एक पीला तथा दूसरा लाल। लामा अपने २ सम्प्रदाय के अनुसार लाल या पीला वस्त्र धारण करते हैं। लाल सम्प्रदाय की संख्या यहां अधिक है। इनका नेता हिमिस गुम्पा का प्रधान लामा होता है। इन मठों के साथ कृषि योग्य जमीनें लगी हुई हैं। कहते हैं कुछ मठ कभी ल्हासा से भी आर्थिक सहायता प्राप्त करते थे। किसान फसल की कटाई के समय कुछ अनाज इन मठों को उपहाररूप में देते हैं।

विदेशी को, चाहे वह किसी भी धर्म का मतावलम्बी हो, उस प्रतिमा भवन में जाने पर कोई पाबन्दी नहीं है। हां, स्त्रियों को वहां जाने की अनुमति नहीं। यह देख कर आश्चर्य मिश्रित कौतुहल हुआ। लद्दाख के बौद्ध समाज में तो नारी को पूर्ण सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त है। वे परदा नहीं करतीं पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सभी काम करती हैं। खेतों की देख भाल तथा सिंचाई का काम प्राय: स्त्रियां ही करती हैं। इस प्रकार जहां आनन्द और श्रम दोनों में स्त्री पुरुष की सहभागिनी है, वहां धार्मिक स्थानों में जाने पर उसपर ऐसा कठोर प्रतिबन्ध क्यों ? सम्भवत: पुरुष ने अपनी कमज़ोरी को छिपाने के लिए ही ऐसा किया हो। वहां के स्त्री समाज के विषय में एक बात और उल्लेखनीय है। समस्त लद्दाख में बहुपति प्रथा का चलन रहा है। इस बंजर रेतीली धरती और खुश्क जलवायु के प्रदेश में जहां पैदावार आवश्यकता से बहुत कम होती थी, जनसंख्या पर अंकुश लगाने की ही सम्भवत: यह एक सुविचारित अवस्था थी। बड़े भाई के विवाह कर लेने पर उसकी पत्नी सभी छोटे भाइयों की भी पत्नी बन जाती है। इन छोटे पतिओं को 'मग्पा' कहते हैं। अब धीरे धीरे यह प्रथा समाप्त हो रही है।

लद्दाख जाने वाला प्रत्येक यात्री यहां लोगों में पाई जाने वाली धार्मिक सहिष्णुता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यहां के निवासियों में मुसलमानों तथा बौद्धों की ही संख्या अधिक है।

यहां ईसाई भी हैं परन्तु उन की संख्या अपेक्षाकृत कम है । विभिन्न धार्मिक विश्वास रखने पर भी उन का खान-पान इकट्ठा हो सकता है । केवल यही नहीं, एक दूसरे के धर्म में विवाह भी कर लिए जाते हैं। एक ही परिवार में मुस्लिम, बौद्ध और ईसाई देखने को मिलते हैं । 'मुलबेक्' तथा 'वाखा' नामक गांवों में एक ही परिवार में आप को मुस्लिम तथा बौद्ध दोनों मिल जाएंगे । उन के बच्चों का धर्म भी भिन्न २ हो सकता है । विश्व-इतिहास में धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों के लोम-हर्षक विवरण पढ़ कर मनुष्य का हृदय कांप उठता है, परन्तु यहां जो धार्मिक सहिष्णुता दृष्टिगोचर होती है उस का उदाहरण शायद ही कहीं और मिलता हो ।

लद्दाखियों के विषय में सुना था कि वे प्रायः नहाते नहीं । इस स्थान की भीषण सर्दी के कारण यह स्वाभाविक ही है। कहा जाता था कि वहां वर्ष भर में केवल एक बार ही नहाने का चलन है तथा पहने जाने वाले कपड़ों को, फट कर चिथड़े बन जाने पर ही बदला जाता है। परन्तु ये सब बातें अब पुरानी हो गई हैं । आजकल वहां के जन-जीवन को देख कर इन बातों पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है । अब तो लेह में गर्म पानी से स्नान करने के लिए एक सुन्दर हमाम भी आप को मिलेगा ।

यह ठीक है कि इतनी ऊंचाई पर, भीषण जाड़े में, स्नान करना अत्यन्त दुष्कर होता है जब तक कि इसके लिए पूरी सुविधाएं प्राप्त न हों । हां, दो गांव इस प्रदेश में अब भी हैं, जहां के निवासी कभी पानी को छूते तक नहीं । यहां के दूसरे लोग उन्हें आर्य-जाति के मानते हैं । उन की शक्ल-सूरत कश्मीरियों से मिलती जुलती है । वे एक विशेष प्रकार की टोपी पहनते हैं जिस पर फूल टंके रहते हैं । 'दा हुन्' तथा 'गरकून' नाम के ये दो गांव लेह-करगिल सड़क से हट कर एक दूसरे से आठ-दस मील के अन्तर पर लगभग आठ हज़ार फुट की ऊँचाई पर बसे हैं । यहां के निवासियों की धारणा है कि पानी से हाथ मुंह धोने, नहाने तथा कपड़े धोने से उनका भाग्य भी साथ ही धुल जाएगा । इसी अन्धविश्वास के कारण ये लोग न मुंह धोते हैं, न नहाते हैं और न ही कभी कपड़े धोते हैं । जो वस्त्र एक बार पहन लिए वे फट कर ही उतरते हैं । जल का प्रयोग केवल भोजन बनाने के लिए ही किया जाता है । ये लोग गाय नहीं पालते और न ही उस का दुध पीते हैं । ये बकरियां पालते हैं और उन्हीं के दूध पर निर्वाह करते हैं । ये बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं परन्तु लद्दाख में प्रचलित बौद्ध मान्यताओं से इनकी धार्मिक आस्थाएं मेल नहीं खातीं । ये लोग अपनी डेढ़ चावल की धार्मिक खिचड़ी अलग ही पकाते हैं ।

लद्दाखी लोग स्वभावतः खुशमिज़ाज, शान्तिप्रिय तथा बड़ी सरल प्रकृति के होते हैं । जिन से भी हम मिले और जहां भी हम गए सभी जगह लोगों ने दिल खोलकर हमारा स्वागत किया । आज का लद्दाख भारतीय प्रजातन्त्री-शासन प्रणाली के अनुसार लोक सभा तथा विधान सभा के लिए प्रतिनिधि चुनता है । अब इस पिछड़े तथा दुरूह प्रदेश में सर्वतोमुखी उन्नति के द्वार खुल गए हैं । यहां के एक उच्चाधिकारी, पद्मश्री

सोनम नरबू से मिलने का अवसर हमें मिला। उन्होंने हमें खाने पर निमंत्रित किया था।

श्री नरबू बड़े सरल प्रकृति के लेकिन गंभीर वक्ता हैं। वह बहुत अच्छे इंजीनीयर हैं। उन्होंने अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढग से बातचीत की और नए लद्दाख की जागरूकता के विषय में बहुत सी बातें बताईं। शिक्षा के विषय में उन्हों ने कहा कि स्वतंत्रता से पूर्व लद्दाख भर में केवल पांच-सात ही स्कूल थे परन्तु अब (१९६७ में) लगभग ढाई सौ स्कूल हैं। शिक्षा का माध्यम उर्दू है। जब मैंने जानना चाहा कि यहां की 'बोधि भाषा' को शिक्षा का माध्यम क्यों नहीं बनाया गया, जब कि यहां के बौद्ध, मुसलमान तथा ईसाई सभी 'बोधी' में ही बातचीत करते हैं तो उनका उत्तर मुझे संतुष्ट नहीं कर सका। यह जान कर प्रसन्नता हुई कि सरकार इस विषय में शीघ्र ही कुछ करने वाली है।

सिन्धु नदी के साथ साथ दोनों ओर दूर तक फैली, खाली धरती के विषय में उन्हों ने बताया कि उस में अधिकतर रेत के मैदान ऐसे हैं जिन्हें हम सिंचाई के पश्चात् भी खेती के योग्य नहीं बना सकते। फिर भी इस ओर सरकार पूरा ध्यान दे रही है। पशु-धन की चर्चा हुई तो पता चला कि तिब्बत की ओर लगभग अठारह हज़ार फुट की ऊंचाई पर भी बहुत अच्छे घास के मैदान मिलते हैं, तथा इतनी ऊंचाई पर पलने वाली भेड़ों की ऊन तथा पशमीना बहुत ही गर्म, मुलायम और बढ़िया होता हैं। हमारी ओर घास के मैदान बहुत कम हैं, और जो हैं वे भी तेरह या चौदह हजार फुट की ऊंचाई पर हैं। अब सरकार इस ओर प्रयत्नशील है कि घास के नए मैदान तैयार किए जाएं। इस सम्बन्ध में कई योजनाओं पर कार्य हो रहा है। यहां की जलवायु में उत्पन्न होने वाले एक ऐसे घास की खोज कर ली गई है जिस में 'प्रोटीन' बहुत अधिक मात्रा में मिलती है और जो पशुओं के चारे के लिए अत्यन्त पौष्टिक है। उन्हों ने आशा व्यक्त की कि निकट भविष्य में हम पशुधन में पर्याप्त उन्नति कर लेंगे।

लद्दाख से लौटते हुए हम सोच रहे थे कि हम एक बहुत ही अजीब स्वप्न देख कर जाग रहे हैं और आंखें मलते हुए अब भी 'जुले'! 'जुले'!! का मधुर शब्द सुन रहे हैं।

* *

पंजाबी कहानी

चुड़ैल

ब्रिगेडियर नरेन्द्रपाल सिंह

श्रीमती विष्णु दिवाकर ने कपड़े उतारे और तख़्तपोश पर औंधे मुंह लेट गई। दीपक ने पसलियों के उभरे हुए मांस पर धीरे-धीरे मुक्के मारने शुरू कर दिए।

पसलियों पर चढ़े मांस से श्रीमती दिवाकर को बड़ी ही चिढ़ थी और वह इससे बहुत खिजती थीं। साड़ी बांधते समय मांस के बड़े-बड़े लोथड़े ढलकने लगते थे। उसने बड़े अर्ज़ वाली कुछ विशेष साड़ियां बनवा रखी थीं। लेकिन फ्रैंच और अंग्रेजी किस्म की साड़ियों का आजकल बन पाना सम्भव न था। और तो अन्य देसी कपड़े भी आजकल वैसे अर्ज़ के नहीं बनते थे जो उसे फिट आ सकते।

श्रीमती दिवाकर ने ब्लाऊज नीचे तक पहनने पर भी अमल किया है पर वह सोचती कि साड़ी की लपेट के साथ लगने वाला ब्लाऊज भी कोई ब्लाऊज होता है-- इससे और स्त्रियां हंसती हैं। गिर-गिर पड़ा। मांस अब कम करना आवश्यक हो गया। सौन्दर्य-विशेषज्ञ ने तख़्तपोश पर नंगा हो औंधे मुंह लेटना और मुक्के लगवाने वाला यह तरीका बताया था।

दीपक मुक्के मारती गई पर श्रीमती दिवाकर को तसल्ली नहीं हो रही थी।

"क्यों री, आज रोटी खाकर नहीं आई?"

थोड़ी देर के बाद—

"क्यों री, सो रही है क्या?"

हां ! ये दोनों बातें ही थीं। दीपक भूखी थी और रात को सोई भी न थी। उसका छोटा भाई छः वर्ष का विनय बीमार था। उसे निमोनिया था। दीपक कैसे सोती ! उसकी मां और बहन वैनी भी नहीं सो सकी थीं। उसने न ही नाश्ता किया और न चाय की प्याली ही पी थी। क्योंकि उसे नौकरी पर पहुंचने की जल्दी थी।

सुबह नौ से ग्यारह बजे तक उसका काम इस कमरे में होता था, जिसका नाम 'सुन्दरता भवन' था। साढ़े आठ बजे जब श्रीमती दिवाकर की आंख खुलती तो श्री दिवाकर उस समय तक तैयार हो चुके होते। पौने नौ बजे नाश्ता मेज पर लग जाता। श्री दिवाकर समय के बड़े पाबन्द थे। उधर नौ बजते और इधर मिल के दरवाजे पर पहुंच जाते। श्रीमती दिवाकर अपने पति के साथ नाश्ता करती और फिर सीधे सुन्दरता भवन में आ जाती।

सर्दी के दिनों में इस कमरे में दो-तीन हीटर जलते। कमरा गर्म हो जाता ! दरवाजे खिडकियां बन्द की जातीं जिससे आदमी बड़े आराम से नंगा हो सकता था। गर्मियां आतीं तो कूलर लगाया जाता। इस कमरे में एक कोने में तख्तपोश पड़ा हुआ था। व्यायाम के लिए यह बड़ी ही आवश्यक चीज है। एक तरफ दीवार के साथ डंडे जड़े थे। उन्हें पकड़ कर बाहों की कसरत होती है और इस तरह ये सुडोल बनती हैं। एक तरफ छत के साथ चमड़े की दो रस्सियां लटक रही हैं। हाथ डालने के लिए, जिन्हें रिंग लगे हुए हैं। एक और स्थान पर पेट पर मालिश करने के लिए एक मशीन है जो विशेष तौर पर अमरीका से मंगाई गई है। एक मेज पर एक और मशीन पड़ी है जो जर्मनी से आई है। इस द्वारा मुंह पर मालिश होती है। इसके अलावा और भी कई प्रकार का साजो-सामान हैं। वास्तव में यह बड़ा ही लुभावना भवन है।

श्रीमती दिवाकर यहां लगभग नौ से बारह बजे तक निवास करती हैं और विभिन्न प्रकार के व्यायाम करती है। अब वह तख्तपोश पर ओंधे मुंह लेटी है और दीपक पसलियों के ढुलकते मांस पर मुक्के मार रही है। सर्दियों के दिन हैं पर कमरा इस तरह गर्म है मानो जेठ-आषाढ़ के दिन हों। श्रीमती दिवाकर का शरीर पसीने से तर है। अभी-अभी वह बाहों की कसरत करके हटी है। और सांस भी फूला हुआ है। ओंधे मुंह लेटना कोई आसान काम थोड़े ही है, पर लेटना जरूरी है।

दीपक मुक्के लगा रही है और उसे भी पसीना छूट रहा है। उसकी साड़ी और ब्लाउज मोटे खद्दर के हैं। उसकी भी कोई कम कसरत नहीं होती। उसे पसीना कैसे न आए। दीपक को अपने आप से ग्लानि हो रही है। वह सोचती है—मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे शरीर से बू आ रही हो। गाढ़े पसीने की बू। श्रीमती

दिवाकर तो अभी नहा कर साफ हो जाएगी पर···। मुझे बाहर निकलते ही ठंड लग जाने का डर है। मैं कल भी नहीं नहाई थी। इस मौसम में मुझ से ठंडे पानी से नहीं नहाया जाता। पानी गर्म करने के लिए घर में लकड़ियां कहां हैं? उफ! मुझे अपने आपसे नफरत होती जाती है। मैं यहां ···घर विनय बीमार, मां बूढ़ी, बैनी नासमझ।

दीवार की घड़ी दस बजाती है और कोई दरवाज़ा खटखटाता है। दीपक सचेत होती है। यह बैरा है जो श्रीमती दिवाकर के लिए कुछ अल्पाहार लेकर आया है। वह उठकर बैरे से ट्रे पकड़ लेती है। श्रीमती दिवाकर मन ही मन में खुश होती है कि औंधे मुंह लेटने से जान छूटी। ट्रे में हारलिक्स का बड़ा प्याला, आम चाय के प्यालों की भांति छोटा-सा प्याला नहीं, दो आधे उबले अंडे और तली हुई मछली के दो टुकड़े।

दीपक तिपाई पर ट्रे रख श्रीमती दिवाकर के पास लाती है। अब वह एक आराम कुर्सी पर आ बैठी है। श्रीमती दिवाकर हारलिक्स पीती है और दीपक अंडे छिल कर नमक मसाला लगा पेश करती है। ग्यारह बजे के लगभग एक गिलास संतरे का रस आता है।

तत्पश्चात् श्रीमती दिवाकर स्नान करती है। दीपक साथ जाती है और नहाने में सहायता करती है—पीठ पर साबुन मलने और अन्य उन स्थानों को साफ करना जहां श्रीमती दिवाकर के हाथ नहीं पहुंच सकते।

साढ़े ग्यारह बजे श्रीमती दिवाकर अपने ड्रेसिंग रूम में प्रवेश करती है। दीपक के कपड़े पहले पसीने से लथपथ थे और फिर गुसलखाने में गीले हो गए। श्रीमती दिवाकर खिजती है—"दीपक, गीले कपड़ों से तू फर्श और कालीन का सत्यानाश कर देती है। हजार बार कहा है, जरा ध्यान रखा करो।"

हजार बार श्रीमती दिवाकर ने ध्यान देने के लिए कहा है। हजार बार कहा है कि दीपक और कपड़े सिलवाए, गीले कपड़े बदल लिया करे और दीपक ने इस बारे में फैसला भी कर लिया था कि वह दो-तीन नई साड़ियां खरीदेगी पर विनय को निमोनिया हो गया। अब जब श्रीमती दिवाकर ने टोका तो उसका ध्यान पुनः विनय की ओर चला गया। वह सोचती है—विनय की जान का भरोसा नहीं, मैं साड़ियां कैसे खरीदूं। मैं जानती हूं कि इधर विनय ठीक होगा, अगर हुआ तो, उधर मां पड़ जाएगी। मैं क्या करूं।

चार वर्ष पहले दीपक ने बी. ए. पास किया था। अभी वह एफ. ए. में ही

पढ़ती थी कि उसके पिता सुन्दरराज की मृत्यु हो गई। श्रीविष्णु दिवाकर की मिल में वह एक कर्मचारी था। वेतन अधिक तो नहीं था पर बुरा भी नहीं। अमीरों जैसा ठाटबाठ तो नहीं था पर अभाव भी किसी चीज का न था। गुजारा अच्छा होता था। पिता की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व दीपक की सगाई हो चुकी थी और यह निश्चित हुआ था कि शादी ढाई साल वाद होगी जव दीपक बी. ए. पास कर लेगी।

सुन्दरराज की मृत्यु के पश्चात दीपक की मां ने जल्दी शादी के लिए कहा। लड़का जिसका नाम सतीश था, अड़ गया। वह कहता कि बी. ए. पास लड़की के साथ ही वह शादी करेगा। दीपक ने जब बी. ए. पास किया तब तक उनकी हालत बहुत पतली हो चुकी थी। दो साल घर से निकाल कर खाना कोई आसान बात न थी। अब लड़के के मां बाप इधर-उधर की मारने लगे। दीपक ने कहा—"मां, मैं शादी नहीं करूंगी। आपने मुझे बी. ए. कराया है। मेरा फर्ज है कि मैं विनय और वेनी को पढ़ाऊं।"

"बेटी, बिना शादी के उमर नहीं कटती इस देश में।"

"कटेगी मां।"

मां जोर देती पर बेटी ने 'नाही' का पल्ला थामे रखा। मां रोती और दुखी होती। पर बेटी चुप रहती। दीपक ने टाईप सीखी और एक दफ्तर में नौकरी करली। दीपक का सौन्दर्य था कि मालिक का मन हाथ से बाहर निकलने लगा। एक साल कहीं और लगाया वहां भी मुश्किल से अस्मत बची। एक स्थान पर और धक्के खाए—पांच मास डेढ़ सौ रुपए पर नौकरी की। मुश्किल से दो सौ रुपए मिले क्योंकि फर्म बोगस निकली और दीपक को टरका गई। अन्त में श्रीविष्णु दिवाकर को सुन्दरराज के परिवार पर दया आ गई। श्रीमती दिवाकर को एक निजी आया की जरूरत थी। एक लड़की जो समझदार हो, जो उसका प्रदर्शन अन्य 'लेडियों' सेठानियों तथा सभ्य महिलाओं के सामने कर सके। पढ़ी लिखी हो ताकि अंग्रेजी में सुन्दरता के बारे में छपने वाली पत्रिकाएं पढ़कर सुना सके।

दीपक पढ़ती और पढ़कर सुनाती और समझाती। अनेक वस्तुओं के आर्डर दिए जाते। करीमों, लिपस्टिकों, मेसकारे, पाउडर, तेल टानिकों आदि के ढेर लग जाते। दीपक श्रीमती दिवाकर को इनके प्रयोग का ढग बताती और पढ़-पढ़ कर समझाती भी।

उसे दो सौ रुपया मासिक मिलता था। रकम काफी बड़ी थी और घर का गुजारा बखूबी चलता। डेढ़ साल की नौकरी में दीपक ने कोई नागा नहीं किया था।

समय पर वह दिवाकर जी की कोठी पर पहुंच जाती और सदैव असमय लौटती। असमय, क्योंकि श्रीमती दिवाकर के कपड़े उतारते समय दीपक की उपस्थिति जरूरी थी। पार्टियों, क्लबों और नाचों में श्रीमती दिवाकर को सदैव ही देर हो जाती थी। दीपक उसका इन्तजार करती। वह आती और उसके आध घण्टे बाद उसे कहीं छुट्टी मिलती। दीपक ने न ही कभी गिला किया और न ही कभी जल्दी जाने की आज्ञा ही मांगी।

घर जाकर दीपक ने करना भी क्या था। वह सोचती—यहां ही अच्छी हूं—जीवन के बारे में सोचती हूं, अतीत और भविष्य के विषय में विचार करती हूं, गरीबी और अमीरी पर एक नजर डालती हूं। सतीश को याद करती हूं। उसकी शादी हो गई है एक अमीर घर में लेकिन पत्नी सुन्दर नहीं। पर क्या हुआ? अमीर घर तो है।

घर जाकर मैं क्या करूंगी। विनय और वैनी से भी क्या बातें करूंगी। हंसना खेलना तो मेरे जीवन से अब बिदा ले चुका है। कमाती हूं, बहन-भाई को पढ़ाती हूं, यह एक बहुत बड़ा सन्तोष है। कइयों को इतनी सन्तुष्टि भी नसीब नहीं होती। मैं कइयों से अच्छी हूं, मैं खुशकिस्मत हूं।

श्रीमती दिवाकर व्यायाम करती, दीपक उसके साथ होती। दीपक उसे नहलाती और तैयार करती। बारह बजे तैयार होकर वह कभी मोटर में बाहर चली जाती—किसी पार्टी में या किसी को मिलने के लिए अथवा किसी वस्तु का प्रबन्ध करने के लिए। कभी वह बाहर धूप में बगीचे में जा बैठती।

दीपक उस समय ड्रेसिंग रूम साफ करती। कपड़े, पाउडर, लिपस्टिक, तेल, लोशन, करीमें आदि करीने से यथोचित जगह पर सजाती। शीशे पोंछती और एक-एक चीज झाड़ती। फिर सुन्दर भवन में जाती। इतनी देर तक मेहतरानी झाड़ू दे चुकी होती। एक और नौकर झाड़ पोंछ चुका होता। यहां दीपक का काम था सामान करीने से लगाना।

श्रीमती दिवाकर जब बाग में बैठती तो वह दीपक को अपने पास बुला लेती। उसका काम अभी तक समाप्त नहीं हुआ होता था पर वह आ जाती क्योंकि वह 'नाहीं' करना तो जानती ही न थी। सदा 'जी' ही उसके मुंह से निकलता। बाहर आ वह श्रीमती दिवाकर को अंग्रेजी पत्रिकाएं और किताबें पढ़कर सुनाती।

वैसे दोपहर के भोजनोपरान्त दीपक को घण्टा दो घन्टे आराम करने को मिल जाते हैं पर जिस दिन से बगीचे में हाजिरी भरनी पड़ती तो वह समय सफाई तथा अन्य कामों में खप जाता है।

आज ऐसा ही हुआ। आज श्रीमती दिवाकर बाहर आ बैठी और दीपक फैशनों की पत्रिकाएं, सुन्दरता के विषय में किताबें तथा वजन कम करने के बारे में साहित्य पढ़-पढ़ कर सुनाती जाती।

एक पत्रिका पलटते पलटते दीपक हैरान ही रह गई। उसके सामने एक नवयुवती थी --अत्यन्त सुन्दर, अति प्यारी, अत्यन्त मीठी एवं मनोहर और दीपक को लगा कि उसकी शक्ल इस लड़की से मिलती है।

उसने पन्ना पलटा। इस लड़की के अन्य अनेक चित्र थे, कहीं पर समुद्र के किनारे रेत तर लेटी है, नहाने के लिए कुछ वस्त्र पहने हुए हैं। एक अंगी और जांगिया मात्र। अब वह समुद्र में नहा रही है। कैसे लिये गये होंगे ये चित्र। एक और चित्र में वह एक घोड़े पर सवारी कर रही है, एक में शाम की पार्टी के लिए सुन्दर पोशाक में सजी खड़ी है। एक में वह किसी के साथ नाच रही है। एक में वह सोने वाले वस्त्रों में है। एक में वह बाथ रूम ड्रेसिंग गाऊन में है। दीपक पढ़ कुछ नहीं रही केवल मात्र उस लड़की की ओर निहारे जा रही है। इसके नक्श बिल्कुल उसके नक्शों की तरह हैं --नाक की तराश, ओठों की बनावट, कपोल की कोमलता, सुराईदार गला, छातियां, शरीर। इन दोनों का अंग प्रत्यंग मिलता जुलता है--हू-बहू।

एकाएक श्रीमती दिवाकर बोली, "तुझे आज क्या हो गया है, दीपक! नींद आई है क्या?" दीपक चौंकती है। अपनी मोटी और गीली साड़ी के साथ वह अपना माथा पोंछती है। श्रीमती दिवाकर से माफी मांग वह अपना काम करने लगी। साथ ही साथ श्रीमती दिवाकर अपना मुंह आईने में देखे जा रही थी। जब उसने आईना रखा, एकाएक दीपक को अपना मुंह उसमें दिखाई दिया। उसने सोचा नहीं, मैं उस सुन्दर लड़की की भांति कहां। कहां वह और कहां मैं। कहां मेरे ये ओंठ जहां कभी लिपस्टिक नहीं लगी। कहां घर में सी गई अंगिया और ब्लाऊज़। कहां मेरे कड़वे तेल से सने बाल और रूखे गाल जिन्हें करीम ने छुआ तक नहीं। कहां मेरा बिना कसरत और खुराक का शरीर। करीम, पाउडर, लोशन, लिपस्टिक, टानिक आदि मेरे आस पास हैं, पर मेरे लिए नहीं। मेरे लिये इस संसार में कुछ भी नहीं है। कौन मुझे क्लब ले जा रहा है, कौन घोड़े पर सवारी के लिए और कौन सरोवर या समुन्द्र में नहलाने के लिए। कौन मेरे सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहा है। नहीं, मैं इस लड़की की भांति नहीं! नहीं!!

डेढ़ बजे श्री दिवाकर आए और वह सीधे बगीचे में आ गए। बैरा उनके लिए बियर और श्रीमती दिवाकर के लिये जूस ले आया। दीपक उठकर चली गई। दोपहर के बाद तक उसने भीतर का काम समाप्त किया। मन में रह रहकर विनय का ख्याल

मचल रहा था। रात को उसकी तबीयत ज्यादा खराब थी और सुबह भी हालत नहीं सुधरी थी। कहीं उसे कुछ हो न जाये! दीपक इस विचार मात्र से ही कांप उठी।

ज्यादा देर तक वह उसके बारे में सोच न सकी। आज श्रीमती दिवाकर के सिर में दर्द है। शायद कसरत को देर हो गई है या शायद धूप लग गई है। दीपक अब उनका सिर दबा रही है। अगर घंटा नहीं तो चालीस-पचास मिनट वह उसका सिर अवश्य दबाती रही है। श्रीमती दिवाकर ने सैरीडान की गोलियां खाईं और उठी। शाम को दो पार्टियां हैं-- दो क्यों तीन। पहले काकटेल्स पर जाना है, फिर भोजन पर और बाद में क्लब में ब्रिज के लिए। श्रीमती दिवाकर ने जल्दी तैयार हो ठीक छः बजे घर से निकल जाना है क्यों कि श्री दिवाकर समय के बड़े पाबन्द हैं।

ठीक छः बजे श्रीमती दिवाकर घर से निकलने लगी। दीपक के मन में पता नहीं क्या आया कि उसने वह कुछ किया जो उसने कभी नहीं किया था। पिछले डेढ़ साल से अपनी जबान नहीं खोली थी। जैसी आज्ञा होती वैसा ही करती। जब स्वयं श्रीमती दिवाकर कहती तब ही वह घर जाती थी। घर जाकर भी तो उसने दुखों की गठरी ही खोलनी थी। बहन-भाई को देख कर उसे दुःखी ही तो होना था। उनके फटे कपड़े और फटी पुरानी किताबों को देख उसका दिल रो पड़ता था।

पर आज - - - - ! आज दीपक को पता नहीं, क्या हो गया। वह जबान खोल बैठी। पहले भी भाई बहन बीमार हुए थे, मां चारपाई पर पड़ी थी, कभी बाहर से रिश्तेदार आया था पर क्या मजाल जो दीपक ने मुंह खोल छुट्टी मांगी हो। ऐसा ही होता रहता है, वह सोचती पर कहती कुछ भी नहीं थी।

आज - - -छः बजे जब श्रीमती दिवाकर जाने लगी तो दीपक बोल उठी "आज्ञा हो श्रीमती जी, तो आज मैं घर चली जाऊं, मेरा - - -।"

श्रीमती दिवाकर ने बात काट दी। नौकरों का टरटराना उसे कतई पसंद नहीं था।

"नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। मेरे से नहीं उतरते मेरे ये कपड़े—मुझसे नही संभाले जाते ये। और तेरी जबान खुलती जा रही है। होश हवाश रख कर काम कर, नहीं तो- - - -।"

श्रीमती दिवाकर चली गई। दीपक भीतर आई। उसने मालकिन के इस तीखे रवैये पर गौर नहीं किया। बड़े ही शांत और सहज स्वभाव से वह भीतर आई। जल्दी जाने की आशा में वह लगभग काम खत्म कर चुकी थी। अब करने के लिए विशेष कुछ था भी नहीं।

दीपक बैठ गई। उसने पत्रिका उठाई और फिर एक किताब -फिर एक और पत्रिका। यह पत्रिका वही निकली जो वह दोपहर को देख रही थी और चित्र भी उसी लड़की के सामने आए-उस सुन्दर और प्यारी लड़की के जिसकी शक्ल उसके साथ मिलती थी।

न जाने उसके मन में क्या आया कि दीपक उस लड़की की बड़ी और मुख्य तस्वीर सामने रख ड्रेसिंग टेबुल के सामने खड़ी हो गई। स्टूल सामने रख कर वह शीशे के सामने बैठ गई। इस पर श्रीमती दिवाकर बैठती थी। अभी तक दीपक कभी नहीं बैठी थी पर आज बिना सोचे समझे वह वहां बैठ गई। मानों वह स्टूल उसके लिए ही बना है --जैसे यह ड्रेसिंग टेबुल, करीम-पाउडर, लोशन, बिन्दिया, लिप्सटिक आदि उसकी अपनी सम्पत्ति हों।

तस्वीर सामने रख, सबसे पहले उस ने अपने केस संवारे -हू-बहू उस लड़की के बालों की तरह--विलायती फैशन के इस तरह के बाल बनाना सरल कार्य न था पर उसे कोई कठिनाई न हुई। दीपक स्वयं वह लड़की जो थी --केवल-बाल पिन तीस चालीस लग गए। बाल पिनों की कोई कमी थोड़े ही थी--मेज़ की दराज़ इन्हीं चीजों से तो भरे पड़े थे। बाल संवार कर उसने मुंह पर पाउडर लगाया, भवें बनायी फिर लिपस्टिक लगाई और वह बिल्कुल उस लड़की की भांति लगने लगी। अब उसने अपने नाखुन तराशे, बढ़िया नेल पालिश लगाई। अब उसने श्रीमती दिवाकर का वस्त्र भण्डार खोला और सबसे सुन्दर तथा बहुमूल्य साड़ी निकाली। फ्रांस की अंगिया निकाल मशीन से उसे छोटा किया। ब्लाऊज भी छोटा किया गया। चीन के बने विशेष सैंडल निकाले।

उसे पता भी न लगा कि छः घन्टे कैसे बीत गए वह मां बहिन को भूल गई। उसे अपना बीमार विनय भी भूल गया – —

बारह बजे श्रीमती दिवाकर वापस आई तो उसने दीपक को अब इस रूप में देखा। वह चीखी, "चुड़ैल।"

श्रीमती दिवाकर गिर पड़ी और बेहोश हो गई।

* *

अनु त्रिलोक दीपक

कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना

हरिहरस्वरूप विनोद

जन्म से मुसलमान और हृदय से कृष्ण भक्त कवि नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना ने हिन्दी साहित्य को जो निधि प्रदान की वह निरुपमेय है। यदि यह कह दिया जाय कि भारती मां उन जैसा पुत्र पाकर धन्य हो गयी तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने दोहा, कवित्त, छप्पय और बरवै आदि प्रचलित शैलियों में रचना कर हिन्दी के भण्डार को समृद्ध किया।

अब्दुर्रहीम खानखाना जहां अपने समय के वीर योद्धा, निपुण राजनीतिज्ञ एवं कुशल प्रशासनिक थे वहां योग्य साहित्कार भी थे। उनकी रचनाएं भारतीय संस्कृति की अमर निधि हैं। उनका जन्म संवत् १६१३ (सन् १५५६) में हुआ था। उनके पिता बैरम खां का मुगल सम्राट् हुमायूं के समय में बड़ा सम्मान था। उच्च से उच्च पद उन्हें प्राप्त था। युवराज अकबर की शिक्षा-दीक्षा का समस्त भार उन पर था और जब छोटी उम्र में अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ तब बैरम खां ने संरक्षक बन कर कुशलतापूर्वक राज्य का संचालन किया। सम्राट अकबर ने अपने गुरु तथा संरक्षक के पुत्र रहीम का बड़ा सम्मान किया और अपने दरबार में उन्हें उचित स्थान दिया।

अकबर ने शासन काल में रहीम का अधिकांश समय युद्ध में ही बीता। उन्हें जो भी सुविधाएं प्राप्त हो सकती थीं, सब प्राप्त थीं। ऐश्वर्य और मान की कमी न थी। साहित्य के प्रति उनका प्रारम्भ से ही लगाव था जो अन्त समय तक चलता रहा। उनकी रचनाएं हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं। आइए, कवि अब्दुर्रहीम खानखाना की रचनाओं का रसास्वादन करें। उससे जहां उनके अप्रतिभ व्यक्तित्व का पता लगेगा वहां उनके कवि हृदय का भी परिचय मिलेगा।

अब्दुर्रहीम खानखाना बड़े दयालु थे। निर्धन अथवा आकुल व्यक्ति की तत्काल सहायता करते थे। गुणियों की कला पर रीझ कर सर्वस्व तक दे डालने

की प्रवृति उसमें थी। कवि गंग की उन्होंने पूरी-पूरी सहायता की। कहते हैं कि कवि गंग ने उनकी दानवीरता से प्रभावित हो प्रशंसा में एक बार यह दोहा लिखकर भेजा :

सीखे कहा नवाब जू ऐसी दीने दैन,
ज्यों-ज्यों कर ऊंचो करो त्यों त्यों नीचे नैन ।।

इस पर रहीम ने लिखा :

देनहार कोऊ और है भेजत सो दिन रैन
लोग भरम हम पर करैं ता ते नीचे नैन ।।

इन पंक्तियों को पढ़कर जहां उनकी महानता का पता चलता है वहां यह भी भास होता है कि उन्हें भगवान पर कितनी श्रद्धा थी। एक बार उनसे किसी ने पूछ लिया :

धूल धरत नित सीस पै
कहु रहीम कैहि काज

रहीम ने सुना और तत्काल उत्तर दिया :

जोहि रज मुनि पत्नी तरी
सो ढंढत गजराज ।।

यह सर्वविदित है कि जब भगवान राम महर्षि विश्वामित्र के साथ जा रहे थे तो रास्ते में अहिल्या का उद्धार किया था जो श्रापवश पत्थ र हो गयी थी। कवि ने इसी घटना को अपने दोहे में चित्रित किया है।

गंगा जल में उनकी असीम आस्था थी। उनका विश्वास था कि जो व्यक्ति गंगा जल का सेवन करता है या स्नान करता है उसे विष्णु लोक प्राप्त होता है। वे लिखते हैं :

अच्युत चरण तरंगिनी शिव शिर मालति माल
हरि न बनायो सुर सरि कीजौ इन्दव भाल ।।

यहां कवि का विष्णु लोक पाना अभीष्ठ नहीं क्योंकि वहाँ गंगा चरणों से निकलती है। कवि को तो शंकर लोक चाहिए जिससे वह गंगा को सिर पर धारण कर सकें।

जहांगीर के शासन काल में खानखाना रहीम के दिन अच्छे न रहे। मन्त्रिषद

छिन गया, जागीरें ले ली गईं और उनकी स्थिति बड़ी ही दयनीय हो गई। वे चित्रकूट चले गये। फिर भी जाने पहचाने याचकों ने उनका पीछा न छोड़ा। याचक चित्रकूट पहुंचने लगे। रहीम के पास जो कुछ होता देते किन्तु कब तक दे पाते! आखिर उन्होंने एक याचक को एक दोहा लिख कर दिया :

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश
जा पर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देश

और

अब रहीम दर-दर फिरैं मांगि मधुकरि खाँहि
यारो यारी छोड़ दो अब रहीम वे नाँहि ।।

रहीम के अधिकांश दोहे नीति-परक हैं। धन किसी के पास हमेशा नहीं रहता। अमीरी-गरीबी का चक्र चलता रहता है। किसी ने इस चक्कर का कारण पूछा तो रहीम ने कहा :

कमला थिर न रहीम कहि
यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू
क्यों न चंचला होय ।।

(लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नि है। विष्णु को पुरुष पुरातन भी कहा जाता है। इसी पर कवि का व्यंग्य है कि बूढ़े पति के पास पत्नि कैसे टिक सकती है)

भाग्य पर रहीम को अटूट विश्वास था। उनकी धारणा थी "होइहै वही जो राम रचि राखा" और इसी के अनुसार उन्होंने अपना जीवन निर्वाह किया। राजमहलों में रह कर गर्व नहीं किया और जब परिस्थितियों ने उन्हें झोंपड़ी में रहने के लिए बाध्य कर लिया तब भी उनके माथे पर किसी प्रकार की शिकन नहीं आयी। उन्होंने लिखा :

जो पुरुषारथ ते कहूं, सम्पति मिलति रहीम
पेट लागि वैराट घर तपत रसोइ भीम ।।

कविवर रहीम के सभी दोहे बड़े मार्मिक हैं। जहां वे उपदेशात्मक हैं वहां जीवन के अनुभवों को भी व्यक्त करते हैं। दोहों के अतिरिक्त उन्होंने बरवै छन्द का भी प्रयोग किया। कहते हैं कि उनका एक मुन्शी विवाह के सिलसिले में घर गया और निर्धारित अवकाश बिताने पर भी समय पर उपस्थित नहीं हुआ। जब वह अपने काम पर जाने लगा तब उसे भय लग रहा था कि कहीं उसे जवाब न मिल जाय क्योंकि

बिना अनुमति के लिये छुट्टी बिताना अपराध था। नव विवाहिता पत्नी अपने पति के संशय को भांप गयी। उसने एक कागज पर कुछ लिखकर दिया और कहा इसे खानखाना साहब को दे देना। उसमें लिखा था :

प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय
सींचन की सुधि लीज्यो मुरझि न जाय॥

रहीम ने कागज देखा तो वह गदगद हो गये। उन्होंने मुंशी को कुछ न कहा और फिर बरवै छन्द में रचना की। उनके द्वारा मालिनी छन्द में लिखी गयी शृंगार रस की कविता पठनीय है :—

विगत घन निशी के चांद की रोशनाई
सघन घन निकुंजे कान्ह बंसी बजाई

सुत पति गत निद्रा स्वामियं छोड़ भागीं,
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। दोनों एक दूसरे से परिचित थे और परस्पर श्रद्धाभाव रखते थे। गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थ दोहावली में रहीम द्वारा रचित दोहे को ज्यों का त्यों लिया है। कहते हैं कि एक बार कोई ब्राह्मणी अपनी कन्या के विवाह के लिये धन मांगने के लिये गोस्वामी के पास जा पहुंची। गोस्वामी जी ने उसे यह लिखकर—'सुरतिय नर तिय नाग तिय सब चाहत अस होय'' रहीम के पास भेजा। कहते हैं रहीम ने उस ब्राह्मणी की मांग पूरी की और दोहे को इस प्रकार :

''गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय'' पूरा करके गोस्वामी जी के पास भेजकर अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

आश्चर्य तो इस बात का है कि युवा अवस्था से लेकर वृद्धा अवस्था तक जो व्यक्ति युद्ध, संघर्ष और शासन व्यवस्था में लीन रहा, जिसका जीवन व्यस्तताओं से परिपूर्ण रहा और जो तलवारों की खन-खन के वातावरण में पला वह साहित्य का इतना कुशल चितेरा कैसे बन गया। सच तो यह है कि कविवर रहीम ने जो कुछ हिन्दी साहित्य को दिया वह अनमोल है। उनके कुछ और दोहे इस प्रकार हैं :

रहिमन काऊ का करे ज्वारी चोर लबार,
जो पत राखनहार है माखन चाखन हार ।।

रहिमन वे नर मर चुके जो कहुं मांगन जाहिं ।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ।।

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून,
पानी गये न ऊबरे मोती, मानुष, चून ।।

इस प्रकार कविवर रहीम ने हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ दिया । उनके सभी दोहे जन-जीवन को उभारने वाले हैं । वे उच्च पदाधिकारी होते हुए भी जनता के कवि थे ।

* * *

'वेलि' का प्रकृति-वर्णन

श्रीमती प्रीति कुमार

कवि पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' डिंगल साहित्य का एक अनुपम ग्रन्थ है । चारण कवियों ने जहां उसे "पांचवा वेद" कह कर सम्मानित किया है वहां "वेली" के सम्पादक टैसटरी ने उसकी वीरत्वपूर्ण कविता से प्रभावित होकर कवि को डिगंल के कवि होरेस (Horace) कहा है । श्री सूर्यकरण पारीक उन्हें हिन्दी का भवभूति मानते हैं तो श्री मेनारिया जी उनकी उपमाओं को होमर के समकक्ष रखने को तत्पर हैं । वस्तुत: "वेलि" हिन्दी और डिंगल साहित्य की उच्चतम् कृतियों की कोटि में रखी जा सकती है ।

राठौड़राज-पृथ्वीराज का काल राजनैतिक दृष्टि से वह समय था जब मुगल शासन अपने पूर्ण यौवन पर था । प्रतापी अकबर के राज्य में हिन्दू जनता अपना प्राचीन वैभव भूल कर सिर नवाए उनके दरबारी रत्नों क रूप में जड़ित हो चुकी थी । ऐसे समय में जब मुग़लों के प्रचण्ड सूर्य के ताप के सम्मुख हमारा सम्पूर्ण साहस गलित हुआ जा रहा था । केवल दो ही शक्तियां ऐसी थीं जिन्होंने अकबर के विरुद्ध युद्ध की दुन्दुभि फूंकी । एक थे राणा प्रताप और दूसरे पृथ्वीराज के कनिष्ठ भ्राता रामसिंह । इसके विपरीत कवि पृथ्वीराज ने अकबर के दरबार में रहकर उससे सम्मान और जागीर पाकर भी अपनी विद्रोही वाणी को मुखरित किया और उसे अकबर का यशोगान करने को गिरवी नहीं रखा । उन्होंने वहां भी महाराणा प्रताप का वर्णन करने में अपने काव्यत्व का उपयोग किया ।

पृथ्वीराज का जन्म बीकानेर के राज्यवंश में संवत १६०६ में मार्ग शीर्ष कृष्णा १ को हुआ था । राजपूतों का वीर रक्त इनकी शिराओं में बहता था । पृथ्वीराज

अपनी वीरता, साहस और देशानुराग के लिए तो विख्यात थे ही साथ ही अपनी विद्वता-ज्ञान और काव्य-कौशल के लिए प्रसिद्ध थे। इनकी मृत्यु से दुःखी होकर अकबर ने कहा था:

पीथल सूं मजलिस गई-तानसेन सूं राग
रीझ बोल ''हंसि खेलिबो, गयो बीरबल साथ।''

स्पष्ट है कि अकबर के दरबार में उनकी कितनी प्रतिष्ठा थी। पृथ्वीराज के द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थ डिंगल में मिलते हैं। और इनकी प्रमुख रचना ''वेलि'' की तो कई प्रतिलिपियां उपलब्ध होती हैं। ''वेलि'' भक्ति-रस प्रधान रचना है। यद्यपि 'वेलि' में कवि का कवि रूप ही प्रमुख रूप से सामने आता है किन्तु उसमें भक्ति अदृश्य रूप से सदा साथ रहती है। वेलिकार का जन्म जिस काल में हुआ वह हिन्दी साहित्य में रीति काल और भक्ति काल का सन्धि-स्थल था। वीर भूमि राजस्थान में जन्म लेने के कारण उनकी रगों में राजपूती वीर रक्त प्रवाहित हो रहा था उनकी यही वीरता और भावुक शृंगारिकता गंगा-यमुना के रूप में उनके काव्य में बह रही है और भागवत की भक्ति मानों दिव्य सरस्वती की धारा है और इन्हीं तीनों का संगम-स्थल ही है 'वेली'। भागवत के आख्यान पर आधारित यह काव्य एक में अनेककी अनुभूति कराता है। भक्ति और शृंगार का यह मिलन-ग्रन्थ है। छोटे से कथानक को कवि ने अपने चातुर्य से एक खण्ड काव्य का रूप दे दिया है और प्रसंगानुकूल उसमें सब प्रकार के वर्णनों का अवसर खोज लिया है।

भाव रमणीयता की दृष्टि से तो 'वेलि' अति सुन्दर है, किन्तु प्रकृति के वैभव को जिस मनोमुग्धकारी रूप में इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है वह भी दृष्टव्य है। बड़े कौशल से कवि ने षट्ऋतु वर्णन का भी अवकाश निकाल लिया है। प्रकृति का वर्णन जिस रम्यता से कवि ने किया है उससे स्पष्ट होता है कि कवि कितना भावुक, मौलिक और सूक्ष्म निरीक्षण युक्त है।

आरम्भ में ही कवि ने बड़ी सूक्ष्मता से रुक्मणी के रूप का वर्णन करते हुए उसकी तुलना प्रकृति की वस्तुओं से की है। रुक्मणी की उपमा कनक लता से दी है और उसके शरीर पर शोभित आभूषण मानों नक्षत्रों के समान हैं। समान वय कुल और शीलयुक्त सखियों में खेलती हुई वह इस प्रकार शोभित है जैसे कमलिनी की पंखुड़ियां अथवा नील गगन में खिले नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा। रुक्मणी का अत्यन्त रम्य रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कवि कह रहा है:

संग सखी सील कुल वेस सामाणी, पेखि कली पदमणी परि।
राजति राजकुअंरि राय, अंगण, उडीयण वीरज अम्ब हरि

यही नहीं कवि शिशिर वसंत आदि ऋतुओं का आगमन भी रुक्मणी के शरीर में देख लेता है—

सैसव सुजु सिसिर वितीत थयो सहु। सुण गति मति अति एह गिणि।

आप तणी परिग्रह लै आयौ तरुणापौ रितुराउ तिणि ॥

अलंकारों की सहायता से कवि ने सुन्दर शब्द चित्रों का निर्माण किया है। युद्ध की तुलना वर्षा से करके सुन्दर रूपक बांधा है, जिससे वर्षा का नाद-सौंदर्य मुखरित हो उठता है।

कलकलिया कुन्त किरण कलि अकलि, वरजिन विसिख विवरजित वाउ।
घड़ि घड़ि घबकि धार धारुजल सिहरि सिहरि समरवै सिलाउ ॥

केवल मात्र अलंकारों की सूक्षमता से ही कवि ने प्रकृति का वर्णन इस काव्य में नहीं किया है वरन् प्रकृति का स्वच्छ एवं निर्मल स्वरूप उनकी आंखों में समाया हुआ है यह मानना पड़ता है। अनुरागमयी उष्मा और लालिमा युक्त संध्या सभी कुछ उनके कवि हृदय को प्रभावित करती है। संध्या का वर्णन दो स्थलों पर किया गया है। पहला है विप्र के कुण्डिनपुर से निकलते ही संध्या का हो जाना। इस स्थल पर कवि का शब्द लालित्य और वर्णन कुशलता दर्शनीय है। मात्र दो पंक्तियों में कवि ने गृह-द्वार की शोभा, पथिकों की थकान और उनका विश्राम करना, कोलाहल तथा सूर्य की किरणों का वीमें से सरक जाना अद्भुत कौशल से वर्णन किया है :

"गई रवि किरण गृहे थई गह, रह रह कोइ व रहे रह ॥"

दूसरा वर्णन रति के पूर्व संध्या का आगमन प्रेमी प्रेमिकायों के लिए किस प्रकार के भाव लेकर आता है उसका वर्णन यों है :

सुंकुड़ित सम समा संध्या समयै, रति वंछति रुषमणि रमणि।
पथिक वधु द्रिठि पंखियाँ, कमल पत्र सूरज किरणि ॥
पति अति आतुर त्रिपामुख पेखण, निसा तणों मुख दीठ निठ।
चन्द्र किरणि कुलटा सु निसाचर, द्रावड़ित अभिसारिका द्रिठ ॥

बाह्य तथा आन्तरिक मानव प्रकृति का साम्य तथा एकीकरण विशिष्ट रूप से दर्शनीय है।

प्रभात का वर्णन कवि ने अत्यन्त मनोरम रूप में किया है। रत्यन्त को बड़ी ही व्यंजना पूर्ण शैली में प्रकृति के पदार्थों से साम्य दिखा कर अश्लील होने से बचा लिया है। पतिव्रता नारी की तुलना चन्द्र ज्योत्सना से की गई है जो चन्द्रमा के बिना अपना अस्तित्व भी खो देती है।

गत प्रभा थियौ ससि रयणि गलन्ति, वरमन्दा सई वदन वरि ।
दीपक परजलता इन दिपै, नास फरिम सू रतनि नरि ॥

आगे जा कर कवि ने सांकेतिक शैली में उन सब का वर्णन किया हैं जो प्रभात होने पर संयोग अथवा वियोग को प्राप्त होती हैं यथा-चक्रवाक द्विज मोर आदि। रूपक का सहारा लेकर प्रभात का एक अन्य चित्र भी खड़ा किया गया है जिसमें सूर्योदय को योगाभ्यास-शंख को अनहद नाद कहा है। रात्रि रूपी मायावरण हटा कर सूर्य प्रकाश रूपी परम ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है।

धुनि उठी अताहत संख भेरि धुनि, अरुणोदय थियौ जोग अभ्यास ।
माया पटस निसामै मंजे, प्राणायामें ज्योति प्रकास ॥

षट्ऋतु का वर्णन करके कवि ने जहां एक ओर अपने प्रकृति प्रेम का परिचय दिया वहां कथा के सूत्र को कुशलता से आगे बढ़ाने की योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। प्रद्युम्न जन्म के लिए कवि को काल-व्यवधान की समस्या थी किन्तु उस स्थल पर षट्ऋतु वर्णन करके कवि ने यह व्यवधान मालूम ही नहीं होने दिया और काव्य-नियमों का पूर्ण पालन किया है।

पृथ्वीराज का ऋतु वर्णन भी कालिदास के समान ग्रीष्म से आरम्भ होकर वसंत में समाप्त होता है। पृथ्वीराज के प्रकृति वर्णन की मुख्य विशेषता उनका ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान है, जिसके द्वारा वे प्रत्येक ऋतु में होने वाले गृह-नक्षत्रों, के परिवर्तन, उनकी स्थिति और प्रभाव का विशद् वर्णन करते चलते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण ने उनके इस वर्णन की शोभा द्विगुणित कर दी है। राजस्थान की ऋतुओं, स्थानीय दृश्यों आदि का समावेश करने से यह ऋतु वर्णन सर्वथा मौलिक एंव प्रभाव पूर्ण हो गया है। इस के अतिरिक्त आलम्बन रूप में होने के कारण हिन्दी में यह वर्णन अपने में अनुपम कहा जा सकता है। नायक नायिका के संयोग सुख की ओर भी संकेत मिलता जाता है जिससे कथा-सूत्र कहीं छूटने नहीं पाता और काव्य अत्यन्त रमणीयता को प्राप्त करता है।

सर्व प्रथम कवि ने ७ दोहलों में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया है। सूर्य की प्रचण्डता, वृक्षों की शरणागत वत्सलता, तथा परोपकार का वर्णन करते हुए कवि ने बताया कि जल की कमी के कारण पृथ्वी कठोर हो गई है। सूर्य ने दूसरों के सिर पर से अपना मार्ग बना लिया है। यह कह कर कवि ने उसके प्रचण्ड ताप की ओर संकेत किया है! 'सूर राह किय जगत सिरि।' सूर्य के ताप के कारण आषाढ़ की दोपहरी निर्जन हो गई है। सर्वत्र शून्यता विराजमान है। लू की लहरों ने वनस्पति को दग्ध कर दिया

राजस्थान में ग्रीष्म का रूप कितना भयंकर हो जाता है इसका बड़ा सच्चा और प्रभाव युक्त चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है :

ऊमड़ी घुड़ी रवि लागि अम्बरि, खेतिए उजम भरिइ खोद्र।
मृगशिर वाजि किया किंकर मृग-आद्रा बरिस कीक घर आद्र।

मृग बात और मृगतृष्णा के द्वारा ग्रीष्म की भयानकता का सकेत तो मिलता ही है परन्तु साथ ही वर्षा का सुखद आगमन और कृषकों की कर्म शीलता भी वर्णित है।

वर्षा का वर्णन कवि ने शृंगारिकता को प्रधानता देकर किया है। पृथ्वी और मेघ के मिलन में उस रति-भाव की छाया दृष्टिगत होती है। किन्तु वर्णन का स्वभाविक चित्रण भी वह भूला नहीं है। मोर बोलने लगे हैं, चातक स्वाति बूंद की रट लगाये हुए हैं और भगवान इन्द्र आकाश को चंचल मेघों से सजाने लगे हैं! काले काले मेघों के आगे स्थित श्वेत मेघ घटाओं के साथ वर्षा कड़ कड़ाकर होने लगी है। गंभीर शब्द मेघ गरज रहे हैं, विद्युत मेघ मण्डल में समा रही तथा समुद्र में जल नहीं समा रही इत्यादि वर्णन सरल किन्तु सजीव है। कवि ने एक चित्रकार की भांति अपने वर्णन में रंग भर दिया है। काले और श्वेत कोर वाले मेघों का रूप वर्णन दृष्टव्य है।

काली करि काँठलि ऊजल कोरण, धारे श्रावण घरहरिया।
गलि चालिया दिसो दिसि जगग्रम, थंमि न विरहणि नयमा किया॥

वर्षा के उपरान्त शरद वर्णन में भीं कवि की दृष्टि मुख्यतः नारी रूप और सौंदर्य में ही बंधी रही है। उपमा तथा साम्य के द्वारा कवि ने सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। किन्तु जिन दोहों में कवि ने अपनी दृष्टि नारी रूप से ऊपर उठा कर प्रकृति के विशाल प्रांगण में खुली छोड़ दी है। वे वास्तव में अत्यन्त रम्य हैं। शरद-आगमन या गायें दूध झरने लगीं-धरा रस उगलने लगी। सरोवरों में कमल शोभायमान हुए और स्वर्गलोकवासी पितरों को भी मृत्युलोक प्रिय लगने लगा-शरद की रात्रि इतनी शुभ्र है कि पास होकर भी हंस हंसनी परस्पर पहचान न पाने के कारण विरह वेदना से पीड़ित हो इस प्रकार कर रहे हैं।

बोलन्ति सुहर मुह विरह गमै वे तिसी सुवल निसि सरद तणी।

बोलन्ति मुहरविरह गमै; तिसी सुवल निसि सरद तणी।

हंसणी ते न पासै देखै हंस, हंस न देखै हंसणी॥

चन्द्रिका की धवलिमा में स्वयं चांद खोया सा जान पड़ता है—

'सोलह कला समाई गयौ, ससि ऊजासहि आप आपणै॥

दिन की लघुता और रात्रि की दीर्घता का बड़े कौशल से वर्णन करके कवि ने हेमन्त का आगमन जताया है। हेमन्त के आते ही पवन ने उत्तर दिशा में अपना स्थान बना लिया है। सर्प और धनाढ्य अपने विवर में चले गए। कह कर कवि ने-उक्ति चातुर्य का सफल प्रदर्शन किया है। पृथ्वीराज की उपमा बड़ी सटीक मार्मिक और मौलिक होती है। ऋतुओं में दिन रात के बढ़ने घटने का संकेत इन उपमाओं के सहारे ही उन्होंने किया है। सर्प और धनाढ्य की उपमा के पश्चात वे ऋणी और ऋणदाता की उपमा प्रदान करते हैं जो दिन रात का संकोच और प्रसाद दिखा देती है।

'दिन जँही रिणी रिणाई दरसणि, क्रमि क्रमि लागा संकुडिणि ।।,
मीठि घुडै आकास पोन निसि, प्रौढा करषणि पंगुरिणि ।।'

इसी प्रकार प्रत्येक स्थल पर उनका राशि, दिशा कोण आदि का ज्ञान भी छलकता पड़ता है।

वेलि के षट्ऋतु वर्णन में सबसे सुन्दर एवं रम्य वर्णन वसंत का है। उनकी उपमाओं के क्या कहने—कहीं वह महफिल सजाए हुए हैं-कहीं उसकी सेवा में बंधे हुए तोरण हैं-और कमल की कलियां मानों मंगल कलश हैं—एक वृक्ष से दूसरे तक फैली लतायें मानों वन्दन वार हैं। पृथ्वी पर वसंतागमन से कमलिनी के पत्ते पर पड़े हुऐ ओस कण ऐसे शोभित होते हैं जैसे काँच से बने आंगन में सुन्दर नारियां मोतियों के थाल भर कर बधाई देने आई हों। कितनी दिव्य कल्पना है।

आयौ इलि वसंत बधावण आई, पोइणि पत्र जलएणि परि ।
आंणद कणै काचमैं अंगणि, भामिणि मौतिए थाल भरि ।।

वन में वसंत ही मानों राजा है। मदन उसके मन्त्री हैं। पर्वत शिलाएं उसके सिंहासन हैं। आम्र तरु रूपी छत्र सिर पर शोभित हैं और मंजरी रूपी चंवर पवन डुला रहा है। रूपक के द्वारा वसंत का राजत्व सौंदर्य से पूर्ण प्रतीत होता है।

मन्त्री तहां मयण वसंत महीपति, सिला सिँघासण कर सधर ।
माथ अम्ब छत्र मंडाणा, चलि वरि मंजरि ढलि चमर ।।

वेलि में कवि की कल्पना, चित्रकार के समान सजगता तथा रोचकता अत्र तत्र बिखरी हुई है किन्तु वसंत वर्णन में तो कवि ने अपना समस्त काव्यत्व ही प्रयुक्त कर दिया है ऐसा प्रतीत होता है। ऐसे भावभीने, मधुर विविध चित्र हिन्दी के अन्य कवियों में विरल ही हैं। कवि की कल्पना का प्रसार विचित्र है। स्वर्ग तक फैले ताड़ के पत्र उसे वसंत की दिग्विजय के घोषणा पत्र प्रतीत होते हैं। वन

मण्डप, निर्झर मृदंग कोकिल गायिका और मोर नर्तक बन गये हैं; वसंत की महफिल सजाने के लिए ।

ऋतुराज के प्रसाद से तरू पुष्पों से लद गए हैं जिनके मिलने से पुष्पभार झड़ रहा है । मानों कामदेव ने अपने कराग्र में पुष्प बाणों को पकड़ रक्खा हो- उत्पेक्षा का कितना रम्य उदाहरण है ।

पवन रूपी हाथी का चित्र भी दर्शनीय है :

तोय झरणि छंटि ऊधसत मलय तरि, अति पराग रज घूसर अंग ।
मधु मद श्रवति-संग गति मल्लपति, मदोनमत्त मारुत-मातंग ।।

शब्दों और भावों का अनूठा एकत्व है । मातंग शब्द से मानों मस्ती साकार हो उठती है । इसी प्रकार के अनेक भाव पृथ्वीराज जी ने अपने प्रकृति वर्णन में सर्वत्र प्रस्तुत किए हैं । प्रकृति के प्रत्येक रूप पर उनकी दृष्टि गयी है और उसे उन्होंने पूरी सचाई और भावुकता के साथ शब्दों में बांध दिया है ।

'वेलि' में जहाँ एक कथा की सूक्ष्मता और सुचिता मन मोह, लेती है दूसरी ओर कवि का प्रकृति वर्णन इन्द्रधनुषी रंगों में सज़ कर चित्त विमोहित कर देता है । कवि चित्रकार के रूप में तूलिका लेकर शब्दों को रंगीन बनाता जाता है और पाठक उसमें रसलीन होकर गद्‌गद् हो उठता है । प्रकृति के इतने सुन्दर रम्य और विविध रूप के दर्शन कम ही कवियों ने कराये हैं । निसंस्देह डिंगल का यह अनूठा कवि अपनी अनुपम कृति 'वेलि' के प्रकृति चित्रण में अद्वितीय है । स्पष्ट है कि प्रकृति वर्णन में चित्र बांधने और शब्दों को मुखर बनाने की कला में पृथ्वीराज प्रथम कोटि के कवियों की श्रेणी में स्थान पाने योग्य हैं ।

* * *

सलीब

: मूल कश्मीरी :
मक्खन लाल बेकस

मुहीब वा'नाख राथ सोरेय
शफक ति फोल बाम ताम सोर्योव
तु ताफ सोत सोत ह्यगन छु तेज़ुन
अछिन छु वासान चोपा'र्य क्रेह्न्यर
यि खून् अछदर खमान छु हुतिन्यस
गर्द छि मुहलक त स्यख छि शोलान
सड़क छि फोलाद हिश तत्ये मूच़
पदन फोलिथ आयि बस्तू वाराह
यि वथ छि जेठान सफर छु क्रेठान
यि आसामानुक खोदा छु गा'फिल
छु शीषनागुक ति साय् तुम्यस्य
सु नेंद्रि मंज़ मस्त यूग सादान
छि खीर सागर मन्दान कम ताम
दोहय छि खोदसर गछान वेह ख्यथ
सो या'ग्य यागर पुछिन ति मा थुच्य
दिवान दिग-दिग तुलान तिख-तिख
खोदा छु वुछ्य-वुछ्य खगाल त्रावान
यि ताफ तेज्योव अलाव शोल्योव
यि रोड् फोल जन ज़ाहर छु फूँकान
गर्द छि मुहलक तू वख छु सा'किन
यि खून अछदर खमान छु वुनिवयस
म्ये शाह ह्यनस सोंब ति छमन फुरसथ
यि वथ छि जेठान सफर छु क्रठान
वू वातू ना जल्द कुनि मुकामस
म्ये शान लूसिम सलीब तुल्य-तुल्य

* *

सलीब

: अनुवाद :
(शशि शेखर)

बीती रात भयावह काली
तेज़ लगी होने यह हल्की धूप सुबह की
आँखों के सम्मुख है फिर भी घोर अंधेरा
और उधर फुफकार रहा खूँख्वार अजदहा।
धूल उड़ रही और रेत है आग उगलती
आह, सड़क भी तपा हुआ फौलाद हो गई
पांव झुलस कर अगणित छालों से भर आये
छोर नहीं इस पथ का आता, सफर कठिनतर होता जाता
और उधर ईश्वर ऊपर बेखबर पड़ा है
शेषनाग की छाँह तले है मग्न नींद में
वे होते हैं और कि जो सागर मथते हैं
सदा देवता ही लेकिन पीते हैं अमृत
बिरला कोई है जो ज़हर पिया करता है—
कोई गर्वीला सिर ऊँचा रखने वाला
दण्ड भोगता है चुप अपने स्वाभिमान का
वह प्रमथ्यु उन्नत शिर बंधा शिला से कब से
कब थकता वह गरुड़ विशाल वक्ष में उसके—
चोंच मारते, माँस नोचते बोटी-बोटी !
ऊपर ईश्वर यह सब देख हंसा करता है
तेज़ हो गई धूप, लपट सी तप्त हो गई
ओर उधर फुफकार रहा खूँख्वार अजदहा
नहीं साँस लेने की भी मुझको फुर्सत है
छोर नहीं उस पथ का आता, सफर कठिनतर होता जाता
आह, कि मैं भी जल्दी पहुँचूँ किसी ठिकाने
कंधे टूटे अब सलीब को ढोते-ढोते !

* *

बदला नैं सिज्जी दी संञा

मूल लेखक
वेद दीप

बदला ने सिज्जी दी संझा, में गलियें चा जां !

दूरा दा कुदुआं चेते दे औन फनाके,
पुड़छी लैं हिरखै दी तलियें नै मन आखे,
बाऊ दे चैंचल शारे बी ममा गी भाखे,
पुन्ना खड़ोआं जां बाऊ ने उड्डुरी जां ।

घरे दी द्वारियां भित्त बनेरे सिल्ले,
ठण्डी बाऊ ने बोड़ी दे पत्तर हिल्ले,
कणियें कन्ने मेरे कोटा दे कालर गिल्ले,
चौनें पासै बस पेई दी चुप-चपां ।

बूटें दी सेजला कन्नैं मेरे पैरें ठार,
अखीं च नींदर, चढ़ै दा जियां बखार,
बड़ी तलैटनी पुन्न खड़ोनेई नि थार,
मन ऐ हुट्टे दा थोई जा कुदै बसां ।

जिन्दड़ी बिच नरासा दी संझ बी न्हेरी,
मना दे बद्दल अत्थरूं जन्दे न केरी,
संञ दोआस ऐ दुखें दी, साथन ऐ मेरी,
कन्ने कन्ने मी टोरदी फड़ियै बांह ।

निक्के हुन्दे जियां बेड़े च कल्ले खड़ोचै,
बाउ दी लैहरें च शैनें दी बाज सनोचै,
दिन गोआचे दे आन नि परतियै रोचै,
बीते दे समेंगी परतियै कियां बलां ।

संञ लगी होली रातीं दी गोदा च सौन,
होली जियां, पैर गासा दे पुन्ना ने छोन,
न्हेरे तलाऊ च रुखें दे छौरे बसोन,
घारें जियां कुदै बदली करा दियै छां ।

बिजली लोई ने जगे दे घरें च रोल,
चाननी हस्सदी फड़ियै चन्ना दी जौल,
मंजल मेरी कर्ता ? मी कुत्थूं दी तौल ?
बलगै मी दीयै दी लो ते कच्ची सरां ।।

* *

बिम्ब-प्रतिबिम्ब
हिन्दी अनुवाद

वर्षा में भीगी हुई साँझ

: अनुवाद :
नीलाम्बर देव शर्मा

वर्षा से भीगी हुई साँझ और मैं गलियों में से गुजर रहा हूं ।

कहीं दूर से यादों के झोंके आते हैं । जी में आता है इन्हें (स्नेहभरी) हथेलियों से छू लूं । हवा के इन झोंकों से मेरा पुराना परिचय है । (निर्णय नहीं कर पा रहा हूं) यहीं धरती पर खड़ा रहूँ या इन हवाओं के साथ उड़ जाऊं ।

घरों की खिड़कियां, दरवाजे और मुंडेरें वर्षा से भीग गई हैं । ठण्डी हवा में पीपल के पत्ते काम्प रहे हैं । वर्षा की बूंदों से मेरे कोट के कालर भी भीग चुके हैं । चारों ओर उदास खामोशी है ।

भीगे हुए जूतों में मेरे पैर ठण्ड से सुन्न पड़ गये हैं । आंखें नींद से बोझल हो रही हैं जैसे बुखार चढ़ रहा हो । गीली जमीन पर मेरे पैर फिसल रहे हैं । मन इतना थक गया है (और चाहता है) कहीं विश्राम के लिए आश्रय मिल जाए ।

जीवन में निराशा संध्या की भान्ति घिर आई है । तन में उमड़ते हुए बादल, अश्रु-धारा बन कर बह निकले हैं । मेरे दुखों की साथिन साँझ भी उदास है, और मुझे अपने साथ लिए जारही है ।

(ऐसा लगता है) बचपन में अकेला आगंन में खड़ा हूं और हवा की लहरों में झांझ बजने की अवाज सुनाई दे रही है । (चाहने पर भी) बीते हुए वे दिन नहीं लौटते, चाहे हम उन्हें कितना पुकारें, उनके लिए कितना रोएं ।

संध्या धीरे धीरे रात्रि की गोद में सोने लगी है जैसे आकाश पृथ्वी पर उतर आया हो या अन्धेरे में वृक्षों के साए सरोवर में इस तरह विश्राम करने लगे हों जैसे कोई बदली पहाड़ों पर छांह कर रही हो ।

बिजली के प्रकाश से घरों में चहल पहल है जैसे चांदनी चाँद के साथ हंस रही हो । परन्तु मैं सोच रहा हूं कि मेरी मंजल कहां हैं ? मुझे कहां पहुंचने की जल्दी है ? मेरी इतजार तो वही कच्ची सराय और उसमें जलते दिए की लौ कर रही है ।

* * *

$\frac{6}{10} \times 100$ $\frac{1}{4}$ $\frac{12}{19} \times 100$

Gyan – J.U –	100 %	10	x
Bhu.. III J.U.	~~55~~ 42	19	7
" IV J.U.	~~62~~ 38	21	8
" IV K.U.	~~45~~ 56	9	4
" III K.U.	80	10	2
Gyan K.U.		3	3

$\frac{13}{21} \times 100$

J.U.

	Total	...	
Gyan	10	10	
2. Bhuk III	19	12	$\frac{5}{13} \times 100$
3. Bhuk IV	21	13	
4. K.U.			
1. Gyan	3	3	
B III →	9	8	$\frac{5}{12} \times 100$
B IV →	10	4	3

$\frac{7}{12} \times 100$ $\frac{2}{40} \times 100$ $\frac{8}{10} \times 100$ $\frac{5}{9} \times 100$